उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ९ | १९९० — अक्टूबर-नवम्बर | अंक — ९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनके जीवन में किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता, किन्तु ऐसा होते हुए भी वे स्वयं ही किसी-न-किसी वस्तु से नाता जोड़कर स्वयं को आसक्ति के बन्धन में बाँध लेते हैं। वे मुक्त होना नहीं चाहते। अगर किसी व्यक्ति के स्वयं का कोई परिवार नहीं है, और न उस पर सगे-सम्बन्धियों की देखरेख का भार ही है, तो वह कोई कुत्ता, बिल्ली, बन्दर या तोता पाल लेता है और किसी तरह अपनी संसार-तृष्णा को तृप्त करना चाहता है। मनुष्य पर माया का ऐसा ही जबरदस्त प्रभाव है।

(२)

कहीं मिठाई के कण पड़े हों तो चीटियाँ वहाँ अपने आप आ जुटती हैं। तुम स्वयं मिश्री बनने का प्रयत्न करो, अर्थात् भगवद्-बोध का माधुर्य प्राप्त करने की चेष्टा करो, फिर तुम्हारे निकट भक्त-गण चीटियों की तरह आप ही चले आएँगे।

(३)

नरम मिट्टी पर आसानी से किसी वस्तु की छाप पड़ जाती है, पर पत्थर पर यह सम्भव नहीं होता; उसी प्रकार भक्त के हृदय में ही ईश्वरीय तत्वों की छाप पड़ती है, बद्धजीवों के हृदय में नहीं।

(४)

भक्त को ऐसा भोजन करना चाहिए जिससे शरीर उत्तेजित न हो, मन चंचल न बने।

बोलो जय भगवान !

—श्री पूनमचन्द तोमर
बीकानेर

हर हाल में बोलो जय भगवान,
जय श्रीरामकृष्ण भगवान ।
सुवह को बोलो जय भगवान,
शाम को बोलो जय भगवान ।
काम में बोलो जय भगवान,
आराम में बोलो जय भगवान ॥हर॥

दिन में बोलो जय भगवान
रात में बोलो जय भगवान,
हर बात में बोलो जय भगवान
सब साथ में बोलो जय भगवान ॥ हर ॥

सोते बोलो जय भगबान,
उठते बोलो जय भगवान ।
खाते बोलो जय भगवान
खिलाते बोलो जय भगवान ॥ हर ॥

चलते बोलो जय भगवान,
फिरते बोलो जय भगवान
जीते बोलो जय भगवान
मरते बोलो जय भगवान ॥ हर ॥

दूर में बोलो जय भगवान,
पास में बोलो जय भगवान ।
हर आश में बोलो जय भगवान,
हर सांस में बोलो जय भगवान ॥ हर ॥

श्रीरामकृष्ण के जीवन के आलोक में श्री चैतन्य

—स्वामी प्रभानन्द
सह सचिव, रामकृष्ण मठ और मिशन

(श्रीमत् स्वामी प्रभानन्दजी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-सचिव एवं प्रखर चिंतक और महान मनीषी हैं। प्रस्तुत लेख उनके बंगला निबंध 'श्रीरामकृष्णेर जीवनालोके श्री चैतन्य' का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ। – स०)

भारतवर्ष पुण्यभूमि है। भारतवर्ष की भौगोलिक सत्ता के अतिरिक्त इसका एक आध्यात्मिक भाव रूप भी रहता आया है। इस आध्यात्मिक भाव की प्रेरणा से भारतवासी अनेकता और विचित्रता में एकता की खोज करता है, अल्पता का त्याग कर भूमा के पीछे दौड़ता है और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के परे परम सत्य की उपलब्धि के लिए प्रयास करता है। इस भाव की अनुप्रेरणा से ही वह अत्यन्त सूक्ष्म विचार के द्वारा आत्मानुसंधान करता है। फलतः वह उस परम सत्य का अनुसंधान करता है जो उसके अस्तित्व का सार तत्व है। भारतीय ऋषि आनन्द से और गौरवपूर्वक घोषणा करते हैं—'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्'। इस प्रकार भारतवासियों के जीवन-दर्शन का गठन हुआ है। हमलोगों के महान् राष्ट्र के विभिन्न कालों में समस्त उत्थान-पतन के बीच यह जीवन-दर्शन ही उसका रक्षण-परिदर्शन करता रहा है, पालन-पोषण करता रहा है।

विगत पाँच सौ वर्षों के मध्य यह महत् जीवन-दर्शन भारतवर्ष के दो ऐतिहासिक चरित्रों को केन्द्र बनाकर उज्ज्वल रूप से उद्भासित हो उठा है। एक व्यक्ति का आविर्भाव हुआ १४८६ ई० में। दूसरे व्यक्ति का १८३६ ई० में। अर्थात् दोनों व्यक्तियों के बीच तीन सौ वर्षों का अन्तराल है। प्रथम व्यक्ति हैं महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव और द्वितीय व्यक्ति हैं भगवान् श्रीरामकृष्णदेव। इन दोनों स्वर्णिम व्यक्तियों का आविर्भाव हुआ सोने के बंगाल में। प्रथम व्यक्ति के सम्बन्ध में कवि सत्येन्द्रनाथ दत्त ने कहा है—'बंगाली हृदय में अमृत मंथनकर निमाई ने शरीर ग्रहण किया' और दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में ब्रह्मबान्धव उपाध्याय की उक्ति है—'रामकृष्ण कौन हैं? कौन हैं, यह नहीं जानता। मात्र इतना जानता हूँ कि इस सोने के बंगाल में उस समय सोने का चन्द्रमा—गोरा चाँद (श्रीचैतन्यदेव) के बाद—और दूसरा उदित नहीं हुआ। चन्द्रमा में भी कलंक है—किन्तु रामकृष्ण रूपी चन्द्रमा में कलंक की रेखा तक भी नहीं है।'

इन दोनों महामानवों की जीवन-साधना से बंगाली तथा भारतवासियों का जीवन संजीवित हो उठा है। इन दोनों व्यक्तियों का प्रभाव साहित्य, शिल्प, कला, विज्ञान, संगीत एवं जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में परिव्याप्त हो गया है।

श्रीरामकृष्ण श्रीचैतन्य के परवर्ती युग के व्यक्ति हैं, और इसी कारण से मुझे प्रतीत होता है कि श्रीरामकृष्ण के चेतनालोक में श्रीचैतन्य भली-भाँति उद्भासित हो उठे हैं। श्रीरामकृष्ण के जीवन में श्रीचैतन्य की स्पष्ट छाप है। श्रीरामकृष्ण और श्रीचैतन्य के जीवन की पृष्ठभूमि में सुन्दर

समानता भी आश्चर्य जनक है। श्रीरामकृष्ण के भावालोक से दीप्त श्रीचैतन्य की भावमूर्ति का अनुध्यान करने पर पहले ही दिखाई पड़ता है कि श्रीरामकृष्ण के मन में श्रीचैतन्य के सम्बन्ध में धारणा का आवर्तन-परिवर्तन होता रहा। स्वाधीन चेता, मननशील श्रीरामकृष्ण के मन में स्वाभाविक कारण से ही श्रीचैतन्य के अवतारत्व के सम्बन्ध में गंभीर सन्देह और संशय थे। सत्यनिष्ठ श्रीरामकृष्ण ने परवर्ती काल में अपने श्रीमुख से स्वीकार किया था 'अरे, मुझे भी उन दिनों ऐसा ही लगता था, सोचता था कि पुराण और भागवत में कहीं भी कोई भी नामगन्ध नहीं है—फिर चैतन्य अवतार! वैष्णवों ने खींचतान कर गढ़ लिया है। और क्या! किसी तरह उस बात पर विश्वास नहीं होता था।"

किन्तु श्रीरामकृष्ण की दृष्टिभंगी वैज्ञानिक थी। वे अपने परिशीलनशील मन से श्रीचैतन्यदेव की जन्मभूमि नवद्वीप गये—सत्य का निर्णय करने के लिए। अपने इस अनुसंधान के फलाफल के सम्बन्ध में परिवर्तीकाल में स्वयं ही कहा था—'मथुर के साथ नवद्वीप गया। सोचा, यदि अवतार ही हो तो वहाँ कुछ-न-कुछ प्रकाश होगा, देखकर समझ सकूँगा। किंचित प्रकाश देखने के लिए यहाँ-वहाँ, बड़े गोसाईं के घर, छोटे गोसाईं के घर घूम-घूम कर भगवान को देखने निकला- कहीं कुछ नहीं देख पाया: देखकर मन खराब हो गया; सोचा, क्यों आया? इसके बाद लौट चलूँगा सोचकर नाव पर चढ़ता हूँ, उसी समय देख पाया! अद्भुत दर्शन! दो सुन्दर लड़के—ऐसा रूप कभी देखा नहीं, तप्त कंचन की भाँति रंग, किशोर वयस, सिर पर एक प्रकाशमण्डल, हाथ उठाये मेरी ओर देखते हुए हँसते-हंसते आकाश-पथ से चले आ रहे हैं। ऐसा हुआ कि "यह आया रे" कहकर चिल्ला उठा। यह बात कहते न कहते वे दोनों समीप आकर (अपना शरीर दिखाते हुए) इसके भीतर प्रवेश कर गये, और बाह्यज्ञान खोकर गिर गया! पानी में ही गिर जाता, हृदय निकट था, पकड़ लिया। इसी प्रकार ढर सारा दिखाकर समझा दिया - वे वास्तव में ही अवतार हैं, ईश्वरीय शक्ति के विकास हैं।' श्रीरामकृष्ण के इस दिव्य ज्ञान से यह भी प्रमाणित होता है कि श्रीचैतन्य का जन्म-स्थान और बाल्य लीलाभूमि गंगा के गर्त में विलीन हो गये हैं, इसीसे गंगा के वक्ष पर ही उनका अलौकिक दर्शन हुआ था।

इस प्रकार केवल श्रीचैतन्य का अवतारत्व-निरूपण कर ही श्रीरामकृष्ण रुके नहीं। उन्होंने विभिन्न स्थानों और कालो में श्रीचैतन्य की भाव-लीला की साधना की थी और उसका आस्वादन किया था। 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' के सूत्र से हम जानते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने स्वमुख से कहा था, 'जब लीला से मन नीचे आ जाता तब कभी रात-दिन सीताराम का चिन्तन करता। ... फिर कभी गौरांग के भाव में रहता, दोनों भावों का मिलन पुरुष और प्रकृति के भावों के मिलन जैसा था। इस अवस्था में सर्वदा ही गौरांग के रूप का दर्शन होता।'

एक बार श्रीरामकृष्ण की इच्छा हुई कि वे श्रीचैतन्य का नगर-संकीर्तन देखेंगे। एक दिन दक्षिणेश्वर में अपने घर के बाहर वे खड़े थे। अचानक उनकी आँखों के आगे से मानो पर्दा उठ गया। वे भावचक्षु से देखने लगे पंचवटी की ओर से एक विराट संकीर्तन-तरंग उनकी ओर सामने आ मुड़कर कालीबाड़ी के मुख्य फाटक की ओर चली जा रही है। संकीर्तन-प्रवाह के मध्य भाग में श्रीचैतन्य, नित्यानन्द और अद्वैताचार्य हैं। महाप्रभु प्रेम में मतवाले हो गये हैं। उनका प्रेमानन्द प्रकट होकर चारों ओर अन्य सभी को अभिभूत कर रहा है। उल्लास की अधिकता से कोई अवश होकर गिर गया है अथवा कोई उद्दाम नृत्य कर रहा है। अपूर्व सुन्दर एक अभिज्ञता।

और एक बार उनकी इच्छा हुई कि हरिलीला में जो तीव्र आकर्षण है उसका वे आस्वादन करेंगे।

शिहड़ में वे अपने भगिना हृदय के घर गये थे। वहाँ से चलकर श्याम बाजार में परम वैष्णव नटवर गोस्वामी का आतिथ्य ग्रहण किया था। श्रीरामकृष्ण को कीर्तनानन्द प्रदान करने के उद्देश्य से गोस्वामीजीने प्रसिद्ध कीर्तनियाँ और खोलवादकों को आमंत्रित किया था। ठाकुर भाव-तरंग में बहने लगे। उन्हें केन्द्र बनाकर वहाँ के नर-नारियों के आनन्द की हाट फैल गयी। बाद में श्रीरामकृष्ण ने उसका स्मरण कर कहा था - 'श्याम बाजार में ले गया। समझा गौरांग भक्त हैं। शरीर में प्रवेश करने के पहले दिखला दिया। गौरांग को देखा। ऐसा आकर्षण कि सात दिन सात रात लोगों की भीड़ लगी रही। केवल कीर्तन और नृत्य होते रहे। चहारदिवारी पर लोग, पेड़ों पर लोग।

'नटवर गोस्वामी के घर पर था। वहाँ रात-दिन भीड़। मैं भागकर एक जुलाहे के घर सबेरे जाकर बैठता। फिर वहाँ देखता, थोड़ी देर बाद ही सभी आ गये हैं, सभी खोल-करताल लेकर आये हैं। फिर "तिरकिट !" "तिरकिट !" करते हैं। खाना-पीना तीन-चार बजे होता।'

'रव गूंज उठा—सात बार मरे, सात बार बचे, ऐसा व्यक्ति आया है। बाद में मुझे सर्दी-गर्मी होती, हृदय मुझे खींचकर मैदान में ले जाता; वहाँ पर चींटियों की पाँत जैसी भीड़ हो जाती। फिर खोल-करताल—"तिरकिट !" "तिरकिट !" हृदय ने फटकारा और कहा, "हमलोगों ने क्या कभी कीर्तन सुना नहीं है ?"

अपनी इस अभिज्ञता का वर्णन करते हुए उन्होने यह मन्तव्य प्रकट किया 'आकर्षण किसे कहते हैं, यही समझा। हरिलीला में योगमाया की कृपा से आकर्षण होता है, जैसे जादू हो गया हो।'

श्रीरामकृष्ण ने केवल गौरांगभाव का आस्वादन ही नहीं किया बल्कि उन्होंने गौरांग के भाव में आविष्ट होकर भक्तों पर कृपा भी की थी। कलकत्ते के बलराम भवन में अन्तिम सात दिनों तक निवास करने के समय एक दिन उन्होंने श्रीचैतन्य के भाव में आविष्ट होकर अध्यापक नित्यगोपाल गोस्वामी के हृदय को अपने दायें पाँव से स्पर्श किया था। इस दिव्य स्पर्श ने जादू की भाँति काम किया। अध्यापक गोस्वामी भावाभिभूत हो गये। अविरल अश्रुधारा से उनका मुख और वक्ष प्रवाहित होने लगे। घर का परिवेश दिव्य भाव के आवेश से भर उठा। गिरीशचन्द्र आदि भक्तगण इस घटना के मुग्ध साक्षी थे।

श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में जो विद्वान और साधक गण आये थे उनमें से अनेक लोगों ने लक्ष्य किया था कि श्रीरामकृष्ण में श्रीचैतन्य देव का पुनराविर्भाव हुआ है। चैतन्यचरितामृत और अन्यान्य वैष्णव ग्रंथों में जीवों के उद्धार के निमित्त श्रीचैतन्यदेव के पुनः शरीर धारण करने का संकेत विद्यमान है। वैष्णवशास्त्र में पारंगता साधिका भैरवी ब्राह्मणी ने श्रीरामकृष्ण के आचार-व्यवहार और अलौकिक दर्शन आदि का विचार कर मीमांसा की थी कि श्रीचैतन्यदेव और श्रीनित्यानन्द ये दोनों जीवोद्धारके लिए श्रीरामकृष्णके शरीर और मन का आश्रय लेकर पुनः अवतरित हुए हैं। भैरवी ब्राह्मणी ने घोषणा की थी—'इस बार नित्यानन्द के आवरण में चैतन्यदेव का आविर्भाव हुआ है।' पंडित वैष्णवचरण ने भी उनकी अवस्था का विचार कर अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए कहा, 'जिन उन्नीस प्रकार के भावों या अवस्थाओं के सम्मिलन को भक्तिशास्त्र में 'महाभाव' कहा गया है एवं जिसका विकास अभी तक केवल भावमयी श्री-राधिकारानी तथा भगवान् श्रीचैतन्यदेव के जीवन में ही देखा गया है, आश्चर्य है कि उसके सारे लक्षण श्रीरामकृष्ण के भीतर प्रकट हुए प्रतीत हो रहे। हैं जीव का शरीर उन उन्नीस प्रकार के भावों के प्रचण्डवेग को धारण करने में कभी भी समर्थ नहीं हुआ है। एकमात्र अवतारकाल्प पुरुष ही इस प्रवल भावावेग को धारण करने में समर्थ हो सकता है।' दक्षिणेश्वर में उपस्थित लोग इन सारी

मीमांसाओं को सुनकर चकित हुए थे। फिर श्रीरामकृष्ण कल्लू टोला की हरिसभा में श्रीमद्-भागवत का पाठ सुनते-सुनते भाव में खो गये एवं सहसा तेज गति से जाकर श्रीचैतन्यदेव के आसन पर खड़े हो गंभीर समाधि में लीन हो गये। श्री-रामकृष्ण के ज्योतिर्मय मुख पर प्रेमोद्दीप्त मुस्कान देखकर विशिष्ट भक्तों को प्रतीत हुआ कि वे श्री-चैतन्य महाप्रभु को ही देख रहे हैं। इस घटना की बात वैष्णव समाज में फैल गयी। कालना के भगवानदास बाबाजी ने श्रीरामकृष्ण के इस आ-चरण को गर्हित बताया और उनके प्रति कटु वचन कहे। इसके बाद श्रीरामकृष्ण एक दिन बाबाजी के नामब्रह्म आश्रम में उपस्थित हुए। समाधिस्थ श्रीरामकृष्ण की भावोज्ज्वल देह और उनके आचार-व्यवहार को देखकर बाबाजी विमुग्ध हो गये। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर उनसे बारम्बार क्षमा याचना की।

इस प्रकार वैष्णवसमाज में श्रीरामकृष्ण का प्रभाव-विस्तार हुआ था। दूसरी ओर श्रीराम-कृष्ण के अनुगामियों के एक वर्ग की यह धारणा थी कि श्रीरामकृष्ण श्रीचैतन्यदेव के ही पुनरावतार हैं। रामकृष्ण के इन अनुरागियों के अग्रणी थे गृहीभक्त श्रीरामचन्द्र दत्त। रामचन्द्र दत्त ने श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने के पूर्व ही चैतन्यचरितामृत पढ़ा था। श्रीरामकृष्ण का जीवनवृतान्त सुनकर तथा उनका लोककल्याण करने के अभिप्रेत को लक्ष्य कर उनकी यह धारणा हो गयी थी कि चैतन्यचरितामृत श्रीरामकृष्ण की ही जीवन-गाथा है एवं श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव के पूर्व ही उनकी जीवन-गाथा की रचना हो गयी थी, जैसे श्रीरामचन्द्र के जन्म के पूर्व ही रामायण की रचना हो गयी थी। यथार्थ विवेचन से रामचन्द्र दत्त को विश्वास हो गया कि श्रीरामकृष्ण श्रीचैतन्यदेव के ही मात्र नवीन संस्करण हैं। रामचन्द्र के मत का समर्थन मनोमोहन मित्र, नवचैतन्य मित्र, नवगोपाल घोष, महेन्द्रनाथ गुप्त आदि भक्तों ने भी किया था। उन लोगों ने श्री-चैतन्य और श्रीरामकृष्ण में नित्य नवीन समानता की खोजकर अपने विश्वास को दृढ़कर लिया था। उन लोगों ने लक्ष्य किया था कि श्रीचैतन्य और श्रीरामकृष्ण दोनों ही लोक कल्याण के निमित्त मानव भाव स्वीकार कर लीला विलास कर गये हैं। उनलोगों के विश्वम्भर और गदाधर नाम के मध्य एक अर्थगत सादृश्य है।

ईश्वर दर्शन के लिए उनलोगों की व्याकुलता जनसाधारण को विस्मित करती है, फिर उनलोगों के अलौकिक अनुराग को आत्मीय-जन और बन्धु-बान्धव अक्सर रोग कहने की भूल करते हैं। अन्यान्य अवतारों की भाँति उन दोनों ही व्यक्तियों ने शक्ति की उपासना की थी; फिर दोनों ने ही शिव की उपासना की थी और श्रीरामचन्द्रजी की आराधना की थी। वात्सल्य एवं मधुरभाव की साधना में दोनों जनों की सफलता अतुलनीय थी। दोनों की मातृभक्ति और गंगा भक्ति अन्य लोगों में श्रद्धा दृष्टि का उन्मेष करती है। फिर इस मंडली के भक्तों के विश्वास की जड़ें और भी गहराई में प्रवेश करतीं हैं जब वे लोग श्रीरामकृष्ण के मुख से सुनते हैं, 'मैं ही अद्वैत चैतन्य-नित्यानन्द हूँ, एक ही आधार में तीनों हूँ।' इस प्रकार श्रीरामकृष्ण की भक्तमण्डली के एक वर्ग के भीतर और बाहर एक बात फैल गयी थी—' "फिर गौरचन्द्र का उदय हुआ।"

इस भांति श्रीरामकृष्ण के जीवन में गौरांगभाव की साधना और गौरांगभाव के आस्वादन एवं इसके साथ भक्तमंडली के द्वारा श्रीरामकृष्ण को श्रीचैतन्य महाप्रभु का नवीन संस्करण के रूप में ग्रहण करने के अतिरिक्त भी श्रीरामकृष्ण के चिन्तन के आलोक से उद्भासित श्रीचैतन्य के संबंध में अज्ञातप्राय तथ्यों ने भक्तों और विद्वानों को विमुग्ध कर दिया था। श्रीरामकृष्ण के भावलोक में कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्य पुनः आविष्कृत हुए थे जो काल की धूल के जाल में और संकीर्णता के कोलाहल में जनमानस से मिट गये थे। इन आविष्कारों में से

दो-तीन का उदाहरणस्वरूप यहाँ उल्लेख किया जा सकता है।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि सभी अवतार पुरुष शक्ति का अवलम्बन लेकर लीलाविलास करते हैं, इसीसे वे सब आद्याशक्ति की आराधना करते हैं। श्रीरामचन्द्र का शारदीय दुर्गोत्सव सुप्रसिद्ध है। श्रीकृष्ण ने भी राधायन्त्र को लेकर अनेक साधना की थी। श्रीरामकृष्ण का अपना जीवन चिन्मयी आद्याशक्ति को आश्रय बनाकर गठित हुआ था। गौड़ीय वैष्णव-साहित्य में श्रीचैतन्य की शक्ति-साधना का उल्लेख मात्र नहीं रहने पर भी श्रीरामकृष्ण ने अपनी योग दृष्टि के बल पर यह आविष्कार किया था कि श्रीचैतन्य ने भी शक्ति की आराधना की थी। इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण के वचनों से यह ज्ञात होता है कि श्रीचैतन्य ने अन्नपूर्णा देवी की उपासना की थी।

श्रीरामकृष्ण की एक और मूल्यवान खोज है श्रीचैतन्य की ज्ञान की साधना। युग के प्रयोजन के अनुरूप श्रीचैतन्य के द्वारा भक्तिप्रेम की पराकाष्ठा प्रदर्शित करने पर भी उनमें ज्ञान का सूर्य भासमान था। श्रीरामकृष्ण ने अपनी योगदृष्टि से उद्‌घाटित सत्य के संबंध में कहा था 'चैतन्यदेव को ज्ञान और भक्ति दोनों ही थे। उनके भीतर ज्ञान और बाहर भक्ति का प्रकाश था। हाथी को जैसे भीतर के और बाहर के दाँत होते हैं, उसी प्रकार।'

श्रीरामकृष्ण का एक मूल्यवान अवदान है श्रीचैतन्य के प्रेमधर्म का नया मूल्यांकन। काल के प्रवाह से श्रीचैतन्य द्वारा प्रचारित प्रेमधर्म के भीतर अनेक प्रकार की कलुषता का प्रवेश हो गया था। श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन में परीक्षण-निरीक्षण कर आविष्कार किया था प्रकृत प्रेमधर्म के स्वरूप का एवं घोषणा की थी—"अरे, प्रेम क्या साधारण वस्तु है ? चैतन्यदेव को प्रेम हुआ था। प्रेम के दो लक्षण हैं। पहला—संसार का विस्मरण हो जाय। ईश्वर के प्रति इतना प्रेम कि बाह्य शून्य हो जाय। चैतन्यदेव 'वन को निरख वृन्दावन समझें, सिंधु देख श्रीयमुना समझें।' दूसरा लक्षण—अपनी देह इतनी प्रियवस्तु है, इसपर भी ममता नहीं रहेगी, देहात्मबोध बिल्कुल समाप्त हो जायगा। ईश्वर का दर्शन नहीं होने पर प्रेम नहीं होता।'

इस प्रकार देखा जाता है कि श्रीरामकृष्ण के चेतनालोक में श्रीचैतन्य का प्रकृत स्वरूप प्रकट हुआ था। जिस प्रकार श्रीचैतन्य ने वृन्दावन में श्रीकृष्ण के लीलास्थलों का पुनः आविष्कार किया था, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण ने अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा श्रीचैतन्य के लीलाविलास की अज्ञातप्राय घटनाओं और लीलास्थलों का आविष्कार किया था। उसकी कामना से भी बड़ी बात यह है कि आधुनिक युग में श्रीरामकृष्ण के चिन्तन के आलोक में श्रीचैतन्य के जीवन और वाणी का पुनर्मूल्यांकन हुआ है।

इससे भी बढ़कर एक बात। स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार कहा जा सकता है कि यह रामकृष्ण युग है। इस युग में जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण के भावों के आलोक में वेद-उपनिषद् को समझना होगा, उसी भाँति श्रीचैतन्य के दुर्ज्ञेय जीवन और वचनों की अवधारणा भी उनकी (श्रीरामकृष्ण की) दृष्टि से ही करनी होगी। श्रीरामकृष्णदेव के अनुशीलनपूर्ण मन में केवलमात्र अतीतकाल की घटनाओं का ही बोध नहीं होता है बल्कि श्रीरामकृष्ण का विचारबोध कालोपयोगी साफी (फिल्टर, Filter) का काम करता है। श्रीचैतन्य को कालोपयोगी बनाकर ग्रहण करने पर भी आज के मानव को श्रीरामकृष्ण के जीवन के आलोक में जानना-समझना होगा।

निःसंदेह रूप से यह कहा जा सकता है कि श्रीचैतन्य और श्रीरामकृष्ण का भावादर्श मानव जीवन के विभिन्न चरणों में अनेक रूपों में बिम्बित हो उठा है। वह महादर्श ही विभिन्न रूपों और भंगिमाओं के द्वारा मनुष्य के धर्म, दर्शन, साहित्य, शिल्प, विज्ञान एवं अन्यान्य शाखाओं में पल्लवित हो गया है और भविष्य में भी होगा।

इन दोनों ही महाप्राणों को हम भक्ति से विनत प्रणाम निवेदित करते हैं।

आत्मानन्द-स्मरणम्

— स्वामी गर्गानन्द

यज्जीवनं वै विवृतं सयत्नं
सुनिश्चितं तत् स्मरणीयमत्र ।
तस्याधिकारी न तु जीवितोऽस्ति
स इष्टलोके हि विहाय सर्वान् ॥१॥

जिन्होंने यत्नपूर्वक अपने जीवन को खोलकर रख दिया, वे निश्चय ही स्मरणीय हैं। वे (आज) जीवित नहीं हैं, सबको छोड़कर अपने इष्टदेव के लोक में चले गये हैं।१।

मध्यप्रदेशे शुभवंश जातः
आबाल्य-सादर्श परार्थनिष्ठः ।
जिज्ञासुचित्तः स हि धर्मवित्तः
तुलेन्द्र नाम्नेति समाज-ख्यातः ॥२॥

मध्यप्रदेश के शुभवंश में इनका जन्म हुआ था। बचपन से ही वे परहित के आदर्श में प्रतिष्ठित रहे। वे जिज्ञासु हृदय थे। धर्म ही उनका वैभव था। उनका नाम तुलेन्द्र था।२।

मेधावि शान्तो गुणवान् बलिष्ठः
स्थित्वा स वै नागपुरे च साक्षात् ।
संदर्शयित्वा प्रतिभां सुयोग्यां
उल्लेख्य शिक्षान्तमतश्चकार ॥३॥

वे मेधावी, शान्त, गुणवान और बलिष्ठ थे। नागपुर में रहकर उन्होंने अपनी सुयोग्य प्रतिभा का प्रदर्शन करते हुए उल्लेखनीय शिक्षा प्राप्त की।३।

संसारत्यागं खलु यो हि चक्रे
मोक्षाय चास्मिन् जगतो हिताय ।
वेदानुसारेण यतिर्बभूव
श्रीरामकृष्णाख्य-सुसंघभूक्तः ॥४॥

अपनी मुक्ति और जगत् के कल्याण के लिए उन्होंने संसार का त्याग किया और वैदिक रीति से संन्यास ग्रहणकर श्रीरामकृष्ण संघ से युक्त हो गये।४।

सेवादिकर्मापि कृतं परार्थे
स्थानेषु विस्तीर्णमनेकधाऽस्ति ।
अद्यापि तस्य प्रिय-कर्मकेन्द्रः
साक्षी यथा रायपुराश्रमो वै ॥५॥

उन्होंने लोक हित के लिए कई स्थानों में नाना प्रकार के सेवा कार्य किये। उनका प्रिय कार्यक्षेत्र रायपुर का आश्रम आज भी इस तथ्य का साक्षी है।५।

श्रीरामकृष्णाय च सारदायै
ददौ स पूर्णां हृदयस्थ भक्तिम् ।
श्रीपादपद्मं परमावलम्ब्ये
गतः स्वाधाम्नि जगतः परस्तात् ॥६॥

श्रीरामकृष्ण और श्री माँ सारदा देवी को उन्होंने अपने हृदय की पूर्ण भक्ति अर्पित की। उनके चरण कमलों का परम अवलम्बन लेकर वे संसार का परित्याग कर स्वधाम को चले गये।६।

बुद्धि-विद्या-महोत्साह-प्रीति-सेवापरायणः ।
उदारचरितः प्राज्ञो यः कृतिर्ज्ञानभक्तिमान् ॥७॥

वे बुद्धिमान, विद्वान, महा उत्साही, प्रीतियुक्त सेवापरायण, उदारचरित, विवेकवान, कर्मयोगी, ज्ञानी और भक्त थे।७।

आत्मानन्दं तमारूढं महत्वे परमं यतिम् ।
वन्देऽहं स्मरणीयं तत्-प्रतिभादीप्तजीवनम् ॥८॥

आतमआनन्द में आरूढ़ उन परम यती की मैं वन्दमा करता हूँ। उनका प्रतिभादीप्त जीवन स्मरणीय है ॥८॥

स्वामिनः कर्मयोगस्तु यस्यासीत् सर्वथा प्रियः ।
तं प्रियं न्यासिनं वन्दे रामकृष्णपदाश्रितम् ॥९॥

स्वामी विवेकानन्द का कर्मयोग जिन्हें सर्वथा प्रिय था। श्रीरामकृष्ण पदाश्रित उन संन्यासी की मैं वन्दना करता हूँ।९।

गुरौ पूज्ये गतप्राण हे स्वामिन् महिमान्विते ।
आत्मानन्दं स्मराम्यहं जीवितं ते समुज्जवलम् ॥१०॥

हे पूज्य गुरुगत प्राण, महिमामंडित स्वामी आत्मानन्दजी महाराज, मैं आपके पूजनीय समुज्वल जीवन का स्मरण करता हूँ ॥१०॥

संसार-पथि सतगामि हे पान्थ त्यागि सत्कृतिन् ।
इष्टानुकम्पया राज स्वानन्देन सदा तथा ॥११॥

विश्व-पथ के हे त्यागी, सुकर्मा पथिक, अपने इष्टदेव की कृपा से आप सदा स्वआनन्द में विराजते रहें ॥११॥

६ अक्टूबर, जन्म दिवस

विवेकानन्द समर्पित प्राण–स्वामी आत्मानन्द

– स्वामी निखिलात्मानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ,
इलाहाबाद

स्वामी आत्मानंदजी के पूर्वाश्रम का नाम तुलेन्द्र सिंह वर्मा था। पिता श्री धनीराम वर्मा और माता भाग्यवती के पांच पुत्रों और एक पुत्री में ये ज्येष्ठ थे। इनके पिता और माता दोनों ही बड़े धर्म परायण थे। कहा जाता है कि जब ये गर्भ में थे तो माता भाग्यवती को एक बड़ा अद्भुत स्वप्न हुआ। उन्होंने देखा कि भगवान शंकर उनके सम्मुख प्रसन्न मुद्रा में खड़े हैं तथा दूसरे ही क्षण वे एक शिशु के रूप में उनकी गोद में आ गये। तुलेन्द्र का जन्म रविवार, ६ अक्टूबर सन् १९२९ को बरबन्दा नामक ग्राम में जो कि मध्य-प्रदेश के रायपुर जिले में स्थित है, हुआ था। उपर्युक्त स्वप्न के फलस्वरूप बालक को घर में रामेश्वर कहकर पुकारा जाता था।

तुलेन्द्र बचपन से ही बड़े होनहार थे। उनका गला बड़ा मधुर था। उन्होंने चार वर्ष की अल्प आयु में ही पिता से हारमोनियम सीख ली थी। जब छोटा सा बालक हारमोनियम बजाते हुए मधुर स्वर में गाता तो लोग ठगे से रह जाते थे।

श्री धनीराम बरबन्दा से ६ कि० मी० दूर मांढर में, प्राथमिक पाठशाला में अध्यापक थे। तुलेन्द्र चार वर्ष की आयु से ही पाठशाला जाने लगे। वे अपने मधुर स्वभाव के कारण सबके प्रिय पात्र थे। किसी ने उन्हें कभी अपने साथियों से लड़ते झगड़ते नहीं देखा। उनका प्रेमपूर्ण स्वभाव सभी को उनकी ओर आकृष्ट कर लेता था। माता पिता के धार्मिक संस्कारों ने तुलेन्द्र को बचपन से ही ईश्वर परायण बना दिया। ग्राम्य वातावरण में बालक धीरे-धीरे बड़ा होने लगा।

सन् १९३८ में श्री धनीराम महात्मा गाँधी द्वारा प्रारम्भ किये गये बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय, वर्धा में अध्यापक के रूप में सपरिवार वर्धा गये। प्राय: प्रति रविवार को वे गाँधी जी के दर्शनों के लिए सेवाग्राम जाते। तुलेन्द्र भी उनके साथ जाते। गाँधीजी का इस बालक के प्रति बड़ा स्नेह था। जब वे टहलने जाते तो तुलेन्द्र उनकी लाठी का एक छोर पकड़कर उनके सामने चलते।

वर्धा के प्रशिक्षण की समाप्ति के पश्चात् धनीरामजी की नियुक्ति १९४० में रायपुर में संचालक बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में हुई। तुलेन्द्र ने स्थानीय सेंट पॉल्स स्कूल में ७वीं कक्षा में प्रवेश लिया। सन् १९४२ में श्री धनीराम को "भारत छोड़ो आन्दोलन" में भाग लेने के कारण जेल जाना पड़ा। किशोर तुलेन्द्र पर ही परिवार का सारा भार आ पड़ा क्योंकि परिवार में कोई वयस्क पुरुष नहीं था। भाग्यवती देवी महान आर्थिक कष्टों को झेलती हुई किसी तरह बच्चों का लालन पालन करती रहीं। इन समस्त कठिनाइयों के बावजूद पिता के देश के प्रति इस त्याग ने तुलेन्द्र के हृदय में जबरदस्त प्रभाव डाला और मातृभूमि के प्रति जीवन को समर्पित करने की प्रेरणा का सूत्रपात किया। जब वे कक्षा नवीं में थे तब उन्होंने एक दिन अपने एक मित्र के पास स्वामी विवेकानन्द का एक तिरंगा चित्र देखा।

चित्र शिकागो मुद्रावाला था और उसके नीचे स्वामीजी का कथन उद्धृत था "पुराना धर्म कहता है कि वह नास्तिक है जो धर्म में विश्वास नहीं करता पर नया धर्म कहता है कि नास्तिक वह है जो अपने आप में विश्वास नहीं करता"। स्वामी जी के मोहक व्यक्तित्व और ज्वलन्त उपदेश ने किशोर तुलेन्द्र के हृदय में जबरदस्त हलचल मचा दी। उन्होंने मित्र से पूछा कि इन स्वामीजी की कोई पुस्तक उसके पास है क्या? मित्र के पास कोई पुस्तक नहीं थी पर स्वामीजी की वह तस्वीर और वह कथन तुलेन्द्र के हृदय पटल पर सदा के लिए अंकित हो गये।

सन् १९४३ में पिता की जेल से रिहाई हुई। आन्दोलन में भाग लेने के कारण उनकी सरकारी नौकरी जाती रही। जीवन-निर्वाह की भयावह समस्या उनके सम्मुख उपस्थित थी। शासन से प्राप्त ५०० रुपयों से उन्होंने पुस्तक और स्टेशनरी की एक छोटी सी दुकान खोल दी जो ईश्वर की कृपा से उत्तरोत्तर प्रगति करती गयी जिससे उनके आर्थिक अभाव क्रमशः दूर होते गये।

तुलेन्द्र १९४५ में मैट्रीकुलेशन परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। रायपुर में साइंस कॉलेज न होने के कारण उन्होंने नागपुर के हिस्लाप कॉलेज में प्रवेश लिया। रायपुर के श्री आशुतोष विश्वास के माध्यम से उन्हें नागपुर के श्रीरामकृष्ण आश्रम के विद्यार्थी भवन में आवासीय स्थान प्राप्त हो गया। स्वामी विवेकानन्द को जानने की उनकी हार्दिक इच्छा अब पूर्ण हुई। आश्रम के अध्यक्ष स्वामी भास्करेश्वरानन्दजी के पुनीत साहचर्य में आध्यात्मिक राज्य में प्रवेश करने की उनकी इच्छा बलवती होने लगी। श्रीरामकृष्ण देव और श्रीमाँ सारदादेवी के त्यागमय जीवन तथा स्वामीजी की ज्वलन्त वाणी ने उनके भीतर वैराग्य की अग्नि प्रज्वलित कर दी। सन् १९४७ में रामकृष्ण मठ और मिशन के तत्कालीन परमाध्यक्ष स्वामी विरजानन्दजी महाराज का नागपुर शुभागमन हुआ। तुलेन्द्र ने उनसे मंत्र दीक्षा प्राप्त की तथा उनसे संन्यास जीवन में प्रवेश लेने की अनुमति चाही। स्वामी विरजानन्दजी ने उन्हें अपने सर्वोच्च विश्वविद्यालयीन शिक्षा दक्षता के साथ पूर्ण करने की सलाह दी और उसके बाद निर्णय लेने को कहा। गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर तुलेन्द्र पूरे मनोयोग के साथ अपनी पढ़ाई में लग गये। वे आश्रम के विद्यार्थी भवन में केवल एक वर्ष रहे। इसके बाद वे साइंस कॉलेज के छात्रावास में रहने चले गये। पर उनका आश्रम में आना जाना तथा वहाँ के कार्यक्रम में अपना सक्रिय सहयोग देना अबाधगति से चलता रहा। उन्होंने सन् १९४९ में बी० एस-सी० की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान प्राप्त किया तथा १९५१ में एम० एस-सी० (शुद्ध गणित) की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया। यही नहीं, एम० ए० तथा एम० एस-सी० की परीक्षा में उन्होंने सर्वोच्च अंक प्राप्त कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

तुलेन्द्र ने अपने गुरुदेव के आदेश को अक्षरशः पूर्ण किया। सांसारिक सुख भोग और ऐश्वर्य-प्राप्ति के अनेक प्रलोभन उनके सम्मुख उपस्थित थे। गणित की विशिष्ट उपाधि "रैंगलरशिप" (कैंब्रिज विश्वविद्यालय की प्रख्यात वृत्ति) के लिए उनका चयन सुनिश्चित था। फिर आई० ए० एस० की लिखित परीक्षा भी उन्होंने योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण की थी। पर उनके हृदय में वैराग्य सतत् प्रदीप्तमान था। उन्होंने संन्यास में प्रविष्ट होने का संकल्प किया। और इसीलिए वे आई० ए० एस० की मौखिक परीक्षा में नहीं बैठे यह सोचकर कि कहीं उसमें उत्तीर्ण होने पर आई० ए० एस० पद उन्हें प्रलोभित न कर पाये। फिर पारिवारिक बन्धन उनके रास्ते पर आड़े आ रहा था। माता-पिता का अजस्र स्नेह तथा छोटे भाइयों का अटूट प्रेम उन्हें विचलित कर दे रहा था। विशेषकर माँ का उनके प्रति अगाध स्नेह था। वैसे तो माँ का स्नेह छोटे पुत्रों पर अधिक होता है। पर विशुद्ध

हृदया माँ शिव के अंश से संभूत इस ज्येष्ठ पुत्र के प्रति विशेष प्रेम और आकर्षण का अनुभव करती थी। उनका भी माँ के प्रति बड़ा लगाव था। जब भी वे छुट्टियों में घर आते, माँ को सदैव घर के काम-काज में खटते हुए देख यथासाध्य उनकी मदद करते। माँ के मना करने पर भी न मानते। भाइयों के प्रति भी उनका अगाध स्नेह था। यह प्रेम बन्धन उन्हें पीछे खींच रहा था। पर वैराग्य ने स्नेह पर विजय पायी और उन्होंने एम० एस-सी० का परीक्षाफल के घोषित होने के कुछ ही दिनों बाद जब सारा परिवार उनकी इस सफलता पर आनन्द मना रहा था, उन्होंने गृहत्याग का संकल्प लिया। उस दिन रात को भोजन करके उन्होंने अपनी माँ से कहा - "दीदी,* मैं जा रहा हूँ।" माँ ने यह सोचकर कि जिस प्रकार प्रतिदिन यह भोजन के बाद घूमने जाता है वैसे ही जा रहा है, कहा - "जाओ भैया, जाओ।"

उन्होंने फिर कहा -"मैं जा रहा हूँ, दीदी।"

माँ ने कहा —"ठीक है भैया, जाओ।"

तीसरी बार उन्होंने कहा —"दीदी, मैं जा रहा हूँ।"

माँ ने पुनः कहा—"जाओ न भैया, जाओ।"

तीनबार माँ से आदेश ले, माता-पिता, भाई-बहन तथा सुहृदजनों के स्नेह बन्धन को काटकर उन्होंने संसार का परित्याग कर दिया। बेचारी माँ को क्या मालूम कि उनकी आँखों का तारा सदा के लिए उनसे दूर चला जा रहा है। सबेरा होते ही उन्हें न पाकर सारे घर में कोहराम मच गया। माँ और भाइयों के आँसू थमते नहीं। सारे नगर में उनके मित्रों के पास खोज की गयी। पर उनका कोई पता नहीं चला। पिताजी को लगा कि कहीं वे बेलुड़ मठ तो नहीं चले गये। यह सोचकर वे पता लगाने कलकत्ता के लिए रवाना हुए। पर वहाँ वे नहीं थे। जब पिताजी वापस लौटे तो उन्हें उनका नागपुर से लिखा हुआ एक भावना पूरित पत्र प्राप्त हुआ। पत्र इस प्रकार था --

नागपुर
१३-६-५१

पूज्यवर बाबू जी,

सादर प्रणाम

मैं घर में बिना कुछ निश्चित रूप से बताए निकल पड़ा हूँ, इसलिए आपलोग चिन्तित होंगे। इसका कारण मैं विस्तृत रूप से नीचे लिख रहा हूँ। अभी मैं नागपुर में आ गया हूँ।

मेरी बहुत पहले से यही इच्छा थी और है कि मैं मानव जीवन के उच्च ध्येय को प्राप्त कर सकूँ। यह सब आपकी मुझे बालकपन में दी हुई शिक्षा का प्रभाव है। आपके ही सदुपदेश से मैं बचपन से ही पूजा पाठ की ओर प्रवृत्त हो गया था। यह तो आप जानते ही हैं। आपके समान सत्पिता को प्राप्त कर सचमुच मैं कभी-कभी हर्ष-विभोर हो उठता हूँ। आपके उस प्रयत्न की उपयोगिता जिसके कारण मैं बचपन में खराब साथियों से दूर रहा, आज ठीक ठीक समझ रहा हूँ और मेरा हृदय आपके प्रति अनन्त कृतज्ञता से उछला जा रहा है। आप ने पहले ही मुझे साधु-संग करने के लिए कितना कहा था। किसी साधु का आना सुनकर आप मुझे किस तरह उनके दर्शन के लिए ले जाया करते थे — यही नहीं, जब मैं द्वितीय वर्ष में श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर में था तब आपने अपनी चिट्ठियों के द्वारा मुझे साधु-संग की महत्ता पर कितना गौरवपूर्ण उपदेश दिया था — यह सब सोचकर आज मेरा हृदय भरा जाता है। आपकी उस समय की कुछ चिट्ठियाँ मैंने अपने पास अभी तक रख छोड़ी हैं। आपका मुझे यहाँ के साधुओं के संग से उत्तमोत्तम लाभ उठाने का तथा नर से नारायण बनने का उपदेश अभी तक मेरे कानों में गूंज रहा है।

---

*घर में सभी पुत्र-पुत्रियाँ माँ को "दीदी" नाम से सम्बोधित करते थे और माँ तुलेन्द्र को "भैया" कहकर पुकारती।

आपका उद्धृत किया हुआ वह दोहा—

सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्संग॥

और

जहाँ राम तहं काम नहि जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं रवि रजनी इक ठाम॥

यह सब मेरे हृदय पटल में अक्षुण्ण प्रभाव बनाये हुए हैं। आपके ही इन स्नेह पूरित मंगलमय उपदेशों और कृत्यों का परिणाम है जो आज मैं मानव जीवन की सार्थकता किसमें है यह समझ पा रहा हूँ।

मानव जीवन का चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति ही है यह तो आप स्वयं अनुभव किये हुए हैं। आपका प्रयास भी उसी दिशा में प्रवाहित हो रहा है। आपको यह सुनकर हर्ष होगा कि आपकी इस भक्ति की छाप मुझ पर भी पड़ गयी है। मैं भी अब समझ पा रहा हूँ, कि भगवत्प्राप्ति ही सर्वोच्च सिद्धि है और इस दिशा में प्राणपण से चेष्टा करने का मैने दृढ़ निश्चय होकर कमर कस लिया है।

आशा है कि आपका तथा पूज्य माताजी का मंगलमय, स्नेहपूरित शुभाशीर्वाद मुझे प्राप्त होगा।

पूज्य माताजी को प्रणाम तथा बच्चों को प्यार।

आपका
तुलेन्द्र

यह पत्र पाने के पश्चात माता-पिता दोनों नागपुर गये तथा घर लौटनेके लिए बहुत समझाया। माँ के आंसू तथा पिता के कठोर रुख भी उन्हें अपने संकल्प से विचलित नहीं कर पाये। उन्होंने दृढ़ किन्तु विनम्र शब्दों में कहा कि मैंने अभी यहाँ रहकर साधना करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। अतः मेरा घर लौटना सम्भव नहीं है। व्यथित हृदय लेकर माता-पिता रायपुर लौट आये।

और तुलेन्द्र सचमुच आध्यात्मिक साधना में पूरी तरह डूब गये। रामकृष्ण संघ के अध्यात्म की साधना प्रणाली में ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग का अपूर्व समन्वय है। तुलेन्द्र के जीवन में इन चारों का समुचित विकास धीरे-धीरे परिलक्षित होने लगा। दिन में वे आश्रम के कार्यों में व्यस्त रहते तथा रात्रि में गहन अंधकार में ध्यान की गहराइयों में डूबने का प्रयास करते। आश्रम के अध्यक्ष स्वामी भास्करेश्वरानन्दजी की गम्भीर आध्यात्मिक अनुभूतियाँ, गीता, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् आदि ग्रन्थों पर अपने विद्वत्तापूर्ण दैनिक प्रवचनों के माध्यम से तरुण तुलेन्द्र के भीतर ज्ञान का उन्मेषण करने लगीं। आश्रम प्रदत्त कर्म उनकी चित्त-शुद्धि में सहायक होने लगा। उन्हें आश्रम के प्रकाशन विभाग में कार्य मिला था जिसके अन्तर्गत विभिन्न स्थानों से पुस्तकों की मांग के अनुसार उनकी पैकेट बनाकर डाक से अथवा रेलवे पार्सल से भेजना, नयी प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की प्रूफ रीडिंग करना, यह सब शामिल था। पुस्तकों की मांग अधिक होने पर उन्हें काफी समय तक इस कार्य में व्यस्त रहना पड़ता था।

उनका कंठ बहुत मधुर था। जब वे गाते तो भाव में तन्मय हो जाते। सुनने वाले भी भाव-विभोर हो जाते। विशेषकर जब वे स्वामी विवेकानन्द द्वारा गाये हुए भजनों को गाते यथा—'मन चलो निज निकेतने', 'तुझसे हमने दिल को लगाया,' 'प्रभु मेरे अवगुन चित्त न धरो,' 'तुमि बंधु तुमि नाथ' 'मोको कहाँ तू ढूँढे 'वन्दे' तोमारेइ करियाछि जीबनेर ध्रुवतारा' आदि, तब ऐसा लगता मानो स्वामी जी की ही आत्मा इनके माध्यम से गा रही हो। सारे वातावरण में रस माधुर्य प्रवाहित होने लगता। सन्ध्या के समय जब ये और स्वामी भाष्यानन्दजी[1] साथ बैठकर श्रीरामकृष्ण आरात्रिकम् का गायन करते तो एक अद्भुत ही वातावरण बन जाता। एकादशी के दिन भी रामनाम संकीर्तन में इन दोनों का मधुर गम्भीर स्वर एक अपूर्व वातावरण की

१. वर्तमान में विवेकानन्द वेदान्त सोसाइटी, शिकागो के अध्यक्ष।

सृष्टि करता। जिन्होंने उन दिनों की आश्रम की प्रार्थना सुनी है वे आज भी उसका विस्मरण नहीं कर पाये हैं। परवर्तीकाल में लगातार व्याख्यान तथा प्रवचन देने के फलस्वरूप उनके स्वर-माधुर्य में काफी ह्रास हुआ था। पर इसके बावजूद उनका गायन तथा रामचरितमानस का सस्वर पाठ लोगों को मंत्र मुग्ध करता रहा है। नागपुर आश्रम में सन् १९५१ से १९५८ तक का उनका समय कठोर आध्यात्मिक साधना का रहा है। उस समय जो भी उनके दीप्तोज्वल व्यक्तित्व के सम्पर्क में आये वे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। उनके मधुर स्वभाव, परम आत्मीयता, पर दुःखकातरता तथा परसेवा की भावना ने सम्पर्क में आये लोगों को सदा सर्वदा के लिए उनके प्रेमसूत्र में बांध दिया। आध्यात्मिक अनुभूतियों के अतिरिक्त उन्हें इस बीच कुछ अलौकिक स्वप्न भी हुए। सन् १९५७ में तुलेन्द्र रामकृष्ण संघ के महाध्यक्ष स्वामी शंकरानन्दजी के द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत में दीक्षित हुए तथा उनका नया नाम ब्रह्मचारी तेज चैतन्य हुआ।

सन् १९५८ के अंतिम काल में उनके मन में रायपुर के प्रति एक अजीब सा आकर्षण महसूस होने लगा। इसका कारण था कि स्वामी विवेकानंद जी ने अपनी किशोरावस्था में रायपुर में दो वर्ष व्यतीत किये थे। १९६३ में स्वामी विवेकानन्द की जन्म शताब्दी सारे विश्वभर में मनायी जाने वाली थी। तेज चैतन्य के मन में यह भावना दृढ़ और घनीभूत होने लगी कि जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में रायपुर में भी स्वामीजी का एक समुचित स्मारक बनना चाहिए। इस भावना के पीछे एक प्रमुख कारण वह अलौकिक स्वप्न भी था जो उन्होंने दो तीन वर्ष पहले देखा था। उन्होंने स्वप्न में देखा था कि स्वामी त्रिगुणातीतानन्दजी उनके सम्मुख हाथ में कुछ पुस्तक लिए हुए उपस्थित हैं तथा वे एक हाथ से एक स्थान की ओर इंगित करके उन्हें कार्य करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। तेज चैतन्य को लगा कि वह स्थान रायपुर है। इस स्वप्न ने उस समय उनके मन को आलोड़ित कर दिया था पर उसे उन्होंने महज स्वप्न समझ कर बिसार दिया था। पर आश्चर्य की बात यह कि १९५८ के अन्तिम दिनों में वही स्वप्न उन्हें पु[illegible] दिखायी दिया जिसने उन्हें बहुत बेचैन बना दिया और यह भावना उनके मन को मथ डालने लगी। उन्हें लगा कि शायद बाहर जाकर तपस्या में कुछ समय बिताने से उनकी भावना प्रशमित हो जाय, यह सोच उन्होंने आश्रम से ६ माह का अवकाश ले हिमालय की ओर प्रस्थान किया। वशिष्ठ गुफा के योगी स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी, जो कि स्वामी ब्रह्मानन्दजी के मंत्र शिष्य थे, के सान्निध्य में कुछ समय बिताकर वे फिर उत्तरकाशी चले गये और वहाँ तपश्चर्या में लग गये। पर फिरभी इस भावना ने उनका पीछा नहीं छोड़ा वरन् वह क्रमशः और भी बलवती होने लगी। अन्ततः उन्होंने रायपुर जाने का निश्चय किया और अपने पूर्व आश्रम के भाइयों को लिखा कि वे रायपुर में आश्रम खोलने के विचार से आ रहे हैं अतः वे लोग उसके लिए कोई किराये का मकान खोज कर लें।

इस अप्रत्याशित समाचार से भाइयों, माता-पिता और सुहृदजनों के बीच आनन्द का पारावार न रहा। उस समय रायपुर में "रामकृष्ण सेवा समिति" नाम की संस्था कार्य कर रही थी। इसका प्रारम्भ १९५८ में स्वामी रंगनाथानन्दजी की प्रेरणा के फलस्वरूप हुआ था जब उन्होंने रायपुर में अपने विचारोत्तेजक, प्रभावकारी व्याख्यानों के माध्यम से एक हलचल मचा दी थी। समिति का कार्यालय श्री आशुतोष विश्वास के यहाँ खोला गया था जहाँ नियमित रूप से श्रीरामकृष्णदेव की पूजा अर्चना की जाती थी।

तेज चैतन्य मई १९५९ में रायपुर पहुँचे। बूढ़ापारा में पं० गणेशराम मिश्र जो कि सुप्रसिद्ध चित्रकार तथा बाल साहित्यकार थे, के मकान के एक हिस्से को आश्रम के लिए किराये पर लिया

गया। रामकृष्ण सेवा समिति का कार्यालय भी वहां स्थानान्तरित हो गया। नियमित रूप से आश्रम की सायंकालीन प्रार्थना भी वहाँ प्रारम्भ हो गयी। तेज चैतन्य के दो अनुज देवेन्द्र और राजेन्द्र तथा श्री कृष्ण कुमार द्विवेदी के दो सुपुत्र गिरीश और सतीश जो कि नागपुर में तेज चैतन्य के साथ घनिष्ठ रूप से परिचित हुए थे अपने माता-पिता की सहर्ष आज्ञा से आश्रम में सम्मिलित हुए। कुछ दिनों पश्चात श्री सन्तोष कुमार झा ने जगदलपुर से आकर आश्रम जीवन स्वीकार किया।[1]

रायपुर आने के पश्चात तेज चैतन्य ने २५ मई १९५९ को रामकृष्ण मठ तथा मिशन के महा-सचिव स्वामी माधवानन्दजी को एक विस्तृत पत्र लिखा जिसका सार संक्षेप यह था कि स्वामी विवेकानन्दजी ने रायपुर में अपनी किशोरावस्था के दो वर्ष व्यतीत किये हैं इसलिए उनकी आत्यन्तिक इच्छा है कि स्वामीजो की जन्म शताब्दी वर्ष १९६३ तक रायपुर में एक उपयुक्त स्मारक बने। अपने स्वप्न की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा— "स्वामी त्रिगुणातीतानन्दजी ने कुछ वर्ष पूर्व उन्हें स्वप्न में रायपुर की ओर इंगित करते हुए इस दिशा में कार्य करने का निर्देश दिया है तथा यही स्वप्न ६ माह पूर्व पुनः दिखायी दिया है जिसने मानसिक रूप से मुझे अत्यंत अशांत बना दिया है। अगर मैं रायपुर में कार्य करता हूँ तो इसका तात्पर्य होगा इस दिव्य संघ से नाता तोड़ लेना जिसकी कल्पना मात्र से मैं सिहर उठता हूँ और अगर रायपुर नहीं जाता हूँ तो यह मेरी आत्यन्तिक भावना तथा त्रिगुणातीतानंदजी महाराज के आदेश जो भले स्वप्न में प्राप्त हुआ है, की अवहेलना होगी, जिसके पश्चाताप से मैं ऊबर नहीं पाऊँगा।" अंत में उन्होंने लिखा "पूज्य महाराज, मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप मुझे रायपुर में जनवरी १९६३ स्वामीजी की जन्म शताब्दी वर्ष तक कार्य करने की अनुमति दें। कृपा करके मुझे इस दिव्य संघ से अलग न करें। ऐसा करने से मैं निश्चय ही नैराश्य के गर्त में चला जाऊँगा। मैं यहाँ साढ़े तीन वर्षों तक कार्य करूँगा तथा स्वप्न की बातों को मूर्त रूप देने का प्रयास करूँगा। जैसे ही शताब्दी वर्ष समाप्त होगा मैं समिति के पदाधिकारियों को सब कुछ सौंप कर मठ चला आऊँगा। आप फिर मुझे जहाँ चाहे भेज सकते हैं। मैं इस बीच संन्यास के लिए आग्रह नहीं करूँगा। मैं इस संस्था को संघ के साथ संबंधित करने के लिए आग्रह नहीं करूँगा। मैं केवल परिश्रम करूँगा। मैं परिणामों की ओर, चाहे वे आशाजनक हों अथवा निराशाजनक, दृष्टिपात नहीं करूँगा। मुझे इससे ही संतोष हो जायेगा कि मैंने स्वामी त्रिगुणातीतानंद जी की इच्छाओं को पूर्ण करने का प्रयास किया।

"मैं नहीं जानता कि मैं अपने को पूरी तरह और सही रूप से व्यक्त करने में समर्थ हो पाया हूँ अथवा नहीं। कृपया मेरे त्रुटिपूर्ण विचारों के लिए क्षमा करेंगे। आपसे आशा का एक शब्द मुझे आवश्यक दृढ़ता, उत्साह और शक्ति प्रदान करेगा। मैं जानता हूँ कि मैं मार्ग से जरा भटका जा रहा हूँ पर मैं अपने को असहाय महसूस करता हूँ। मैं जिस मानसिक कष्ट में हूँ उस ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हुए आपसे अपने प्रति विशेष उदारता की याचना करता हूँ। मैं संघ से बाहर जाने की सोच नहीं सकता पर भावनाएँ अपनी तुष्टीकरण के लिए मूर्त अभिव्यक्ति की अपेक्षा रखती हैं। मैं आप पर आश्रित हूँ। मुझ पर कृपा करें।[1]

---

(१) संतोष, देवेन्द्र, गिरीश तथा राजेन्द्र ने बाद में रामकृष्ण संघ में प्रवेश ले, संन्यास व्रत में दीक्षित हो क्रमशः सत्यरूपानंद, निखिलात्मानंद, श्रीकरानंद तथा त्यागात्मानंद नाम प्राप्त किया।

(१) अंग्रेजी में लिखे पत्रांश का अनुवाद।

स्वामी माधवानन्दजी ने अपने दिनांक २-६-५६ के संक्षिप्त पत्र में सलाह देते हुए लिखा कि व्यावहारिक जगत में रहते हुए तुम्हें स्वप्न में विश्वास करना उचित नहीं है। महामाया हमारे मार्ग में जो जाल बिछाती है उसके प्रति हमें अत्यंत सतर्क रहना चाहिए। विशेषकर धार्मिक संघ में हमारे कर्तव्य बड़े कठोर होते हैं।

इसके पश्चात् तेज चैतन्य ने स्वामी माधवानन्द जी को चार पत्र और लिखे जिनमें उन्होंने रायपुर में रहकर कार्य करने की अनुमति प्रदान करने के अपने अनुरोध को बार-बार दुहराया। इसके उत्तर में स्वामी माधवानन्दजी ने उन्हें नागपुर लौट जाने और रायपुर को भूल जाने की सलाह देते हुए लिखा कि स्वप्न को महत्ता देते हुए संघ के प्रति कर्त्तव्य पालन की अवहेलना करना आत्मघात के सदृश होगा। फिर अपने २३ ६-५६ के पत्र में उन्होंने तेज चैतन्य को लिखा, " ''तुम्हारे द्वारा लिये गये भूलपूर्ण निर्णय को स्वीकार कराने के मेरे सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। जहाँ भावनाएं प्रबल होती हैं वहाँ पर उचित विवेकज्ञान को बनाये रखना कठिन होता है। इसलिए तुम्हें सूचित करना मेरा दुखद कर्त्तव्य है कि मैं आगामी बुलेटिन में घोषित करूँगा कि तुमने संघ छोड़ दिया है।"[1]

इस तरह तेज चैतन्य का रामकृष्ण संघ से अक्टूबर १६५६ से सम्पर्क विच्छेद हो गया। ये दिन उनके लिए बड़े नैराश्यपूर्ण थे। श्रीरामकृष्ण सेवा समिति के नाम पर एक पैसा भी नहीं था। मकान का मासिक किराया ३० रुपया भी बड़ी मुश्किल से चन्दा के रूप में एकत्रित हो पाता था। भोजन तथा अन्य वस्तुओं की व्यवस्था पूर्वाश्रम के माध्यम से पूरी की जा रही थी। उनके सहयोगी उस समय सभी विद्यार्थी थे। उनकी पढ़ाई-लिखाई की तरफ उनकी तीक्ष्ण दृष्टि थी। वे चाहते थे कि सभी परीक्षा में उत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण हों। उनकी धारणा थी कि परीक्षा में उत्तम अंक प्राप्त करने से जिस आत्म विश्वास की वृद्धि होगी वह आध्यात्मिक जीवन में सहायक सिद्ध होगी। इसीलिए वे पढ़ाई पर अधिक जोर दे रहे थे। पर उनके सहयोगियों में बड़ा उत्साह था। वे अपनी बाल सुलभ दृष्टि से इस आश्रम की तुलना वराह नगर मठ से करते और आनन्द लेते। सचमुच में सुविधा के नाम पर वहाँ कुछ नहीं था। केवल एक तख्त थी जिस पर तेज चैतन्य सोते। बाकी सभी जमीन पर सोते। गरमी के दिन में तपी हुई छत पर तो कई बार करवट बदलते-बदलते रात बीतती थी। दिन के समय सब भोजन करने घर (पूर्वाश्रम) में जाते और तेज चैतन्य के लिए भोजन का डब्बा ले आते। रात के समय आश्रम में ही सब मिलकर भोजन बनाते। हर एक का कार्य बँटा हुआ था। कोई दाल बनाता तो कोई सब्जी। किसी को बर्तन धोने और किसी को पानी भरने का काम मिला था। तेज चैतन्य का कार्य था रोटी सेंकना। इस तरह अपने बनाये हुए भोजन का स्वाद कुछ और ही होता। छत से लगे हुए ऊपर के कमरे में ठाकुर घर था जहाँ संध्या समय आरती और प्रार्थना होती तथा एकादशी के दिन राम नाम संकीर्तन होता। बीच-बीच में भजन कीर्तन का कार्य चलता ही रहता। अनेक असुविधाओं के बावजूद भी अन्तेवासी बड़े आनन्द में थे।

जुलाई १६५६ से तेज चैतन्य ने नगरपालिका के सभा भवन में रविवासरीय गीता का प्रवचन प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे वह प्रवचन बड़ा लोकप्रिय हो गया तथा उसमें शहर तथा आसपास के गाँव के लोग बड़ी संख्या में आने लगे। विभिन्न ग्रामों से लोग आकर उन्हें प्रवचन के लिए आमंत्रित करने लगे। वे वहाँ जाते तथा स्थानीय भाषा छत्तीसगढ़ी में श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के बारे में चर्चा करते और रायपुर में आश्रम-निर्माण के उद्देश्य के बारे में लोगों को समझाते। क्रमशः आश्रम-निर्माण के लिए गाँवों से

---

१. अंग्रेजी में लिखे पत्रांश का अनुवाद।

पैसा आने लगा। छत्तीसगढ़ की धर्म प्राण जनता इस कार्य में अपना हाथ बँटाने लगी।

तेज चैतन्य ने सन् १९६० में बुद्ध पूर्णिमा के पुनीत दिवस पर अमरकंटक में पुन्यतोया नर्मदा के उद्गम स्थल पर संन्यास ग्रहण किया और अब वे स्वामी आत्मानन्द बन गये। ३० जनवरी १९६१ को मध्यप्रदेश शासन द्वारा आश्रम निर्माण के लिए ६३०९८ वर्गफुट क्षेत्रफल वाला भूमि खण्ड प्राप्त हुआ। तब तक आश्रम-निर्माण हेतु १०-१२ हजार रुपये प्राप्त हो चुके थे। इससे आश्रम के नये भूमिखण्ड को दीवाल से घेरने तथा एक कुटिया बनाने का काम हाथ में लिया गया। १३ अप्रैल १९६२ को रामनवमी के शुभ पर्व पर आश्रम प्रवेश हुआ और स्वामी आत्मानन्दजी अपने सहयोगियो के साथ नये आश्रम में चले आये। कुटी में ३ छोटे छोटे कमरे तथा एक बड़ा कमरा था। एक कमरे को ठाकुर घर, एक को आत्मानन्दजी का निवास कक्ष तथा एक को रसोई घर बनाया गया। बड़ा कमरा भोजन कक्ष तथा सहयोगियों के निवास कक्ष के रूप में व्यवहृत होने लगा। नूतन आश्रम में संध्या आरती और प्रार्थना नियमित रूप से प्रारंभ हो गयी।

क्रमशः आत्मानन्दजी का कार्यक्षेत्र बढ़ने लगा। उन्हें दिल्ली, बम्बई, अमृतसर, इलाहाबाद, काशी, कटक, पुरी आदि स्थानों से तथा मध्य प्रदेश में जबलपुर, इन्दौर, भोपाल, रतलाम, बिलासपुर, झाबुआ, बैतुल से प्रवचन के लिए निमंत्रण आने लगे और वे शीघ्र ही एक कुशल, ओजस्वी वक्ता के रूप में प्रख्यात हो गये।

इधर विभिन्न इमारतों का निर्माणकार्य जारी था। कभी-कभी ऐसा लगता कि राशि के अभाव में निर्माण कार्य बन्द कर देना पड़ेगा। ऐसे समय में अप्रत्याशित रूप से धन-राशि की प्राप्ति हो जाती और कार्य स्थगित नहीं होने पाता। ऐसी ही एक घटना का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। एक वैगन सीमेंट का आर्डर दिया गया था। सीमेंट आ चुका था। उसे छुड़ाने के लिए पैसे नहीं थे। लगभग ५००० रुपयों की आवश्यकता थी। आत्मानन्दजी एक दिन शाम को अपने सहयोगियों के साथ विचार कर रहे थे कि कहीं से ऋण लेकर माल छुड़ाने की व्यवस्था की जाय। ऐसे ही समय में एक अपरिचित व्यक्ति मैले कुचैले कपड़ों में आये और उन्होंने कहा कि मैं कुछ रुपये आश्रम के लिए दान में देना चाहता हूँ। यह कहकर उन्होंने नोटों का एक बण्डल दिया जिसमें पूरे ५००१ रुपये थे। अहैतुकी भगवत्कृपा देखकर सभी अभिभूत हो गये। ऐसी कई घटनाएँ घटी जिससे प्रतीत होता था कि इस कार्य के पीछे प्रभु का वरद हस्त सतत विद्यमान है।

विवेकानन्द शताब्दी वर्ष १९६३-६४ तक स्वामीजी की स्मृति में कई भवन बनकर तैयार हो गये थे, यथा विवेकानन्द विद्यार्थी भवन, विवेकानन्द ग्रंथालय, विवेकानन्द अध्ययन केन्द्र भवन तथा विवेकानन्द धर्मार्थ औषधालय। १७ जनवरी १९६३ को विवेकानन्द शतवार्षिक जयन्ती के शुभ दिन "विवेक ज्योति" हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन तथा "विवेकानन्द आश्रम डाक-घर" का शुभारम्भ हुआ। विवेकानन्द शतवार्षिक जयन्ती समारोह भी बड़ी धूमधाम से विशाल पैमाने पर मनाया गया जिसमें प्रख्यात गाँधीवादी चिन्तक और विचारक काका कालेलकर तथा हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री जैनेन्द्र कुमार ने भाग लिया।

स्वामी आत्मानन्द का स्वप्न साकार हुआ। शताब्दी समारोह के पश्चात् उन्होंने स्वामी माधवानन्दजी को आश्रम की उपलब्धियों के बारे में सूचित करते हुए अनुरोधपूर्वक पत्र लिखा कि प्रभु कृपा से उनका स्वप्न साकार हुआ है। अब उन्हें पुनः संघ में लिया जाय। स्वामी माधवानन्दजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उन्हें प्रोत्साहित करते

हुए उत्तर दिया कि नवनिर्मित आश्रम का संचालन एक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है इसलिए पूरी लगन के साथ अभी वह कार्य किये जाओ ।

सन् १९६४ में पूर्वी पाकिस्तान से लाखों शरणार्थी रायपुर से १३ कि० मी० दूर माना नामक ग्राम में बसाये गये । उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी । शरीर में चिथड़ों के सिवाय कुछ भी नहीं था । अपना सर्वस्व लुटाकर उन्हें चले आना पड़ा था । उनकी दुर्दशा से व्यथित हो स्वामी आत्मानन्दजी ने स्थानीय नागरिकों की एक समिति बना उनके बीच २३ जनवरी १९६४ से सेवा कार्य प्रारंभ किया जो १० महीने तक चला तथा इसमें लगभग दो लाख रुपये व्यय हुए । इस बीच बेलुड़मठ ने भी माना में सेवा कार्य करने का निर्णय लिया । इसकी जानकारी मिलने पर आत्मानन्दजी ने रामकृष्ण मठ तथा मिशन के तत्कालीन महासचिव स्वामी वीरेश्वरानन्दजी को लिखा कि बेलुड़ मठ के इस सेवा कार्य में अपना सहयोग देने में उन्हें प्रसन्नता होगी । उत्तर में स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने उन्हें मठ और मिशन के महासचिव स्वामी गंभीरानन्दजी को जो कि वहाँ कार्य का निरीक्षण करने के लिए जाने वाले थे अपना पूरा सहयोग देने के लिए कहा ।

स्वामी आत्मानन्द स्वामी गम्भीरानन्दजी को लेकर मध्यप्रदेश के बस्तर और उड़ीसा के कोरापुट जिले के विभिन्न स्थानों पर गये जहाँ विस्थापितों को बसाया जाने वाला था । गम्भीरानन्दजी विवेकानन्द आश्रम के भवनों को, वहाँ की गतिविधियों को तथा अन्तेवासियों के उत्साह और सेवा के प्रति लगन को देखकर बड़े प्रभावित हुए । इसके पश्चात् बेलुड़ मठ से रायपुर आश्रम में साधुओं का आना जाना प्रारम्भ हो गया ।

आत्मानन्दजी आश्रम को बेलुड़ मठ में अन्तर्भुक्त करने के लिए विशेष सचेष्ट हुए । समिति के अन्य सदस्यगण आश्रम के बेलुड़मठ में विलय होने के पक्ष में नहीं थे । उनकी धारणा थी कि विलय के बाद आत्मानन्दजी अन्यत्र स्थानान्तरित हो जायेंगे तथा वे पवित्र साहचर्य से वंचित हो जायेंगे । आत्मानन्दजी ने अपने दृढ़ तथा विनम्र शब्दों में सदस्यों को समझाया कि वह दिन आश्रम के लिए परम गौरव का होगा जिस दिन इसका विलय इस दिव्य संघ में होगा । व्यक्ति तो आज है, कल नहीं । पर इस दिव्य महासंघ बेलुड़मठ के साथ अन्तर्भुक्त होकर यह आश्रम स्थायित्व को प्राप्त होगा । श्रीरामकृष्णदेव की महान् अनुकम्पा, स्वामी आत्मानन्द के अथक प्रयास तथा बेलुड़ मठ के संन्यासियों के सहृदयतापूर्ण दृष्टिकोण के फलस्वरूप ७ अप्रैल १९६८ को रामनवमी के शुभ पर्व पर आश्रम का विलय बेलुड़मठ में हो गया तथा आश्रम का नया नाम हुआ—"रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम" । गंगा की धारा जो कुछ समय के लिए मुख्य नदी से विलग हो गयी थी बहती हुई पुनः गंगा में जा मिली । स्वामी आत्मानन्द पुनः संघ में ले लिये गये । संघ के परमाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने सन् १९६८ में माँ सारदा की जन्म तिथि पर उन्हें विधिवत संन्यास प्रदान किया । आत्मानन्द के लिए परम शान्ति और तृप्ति का दिन था वह । माँ से बिछुड़ा हुआ पुत्र पुनः संघ जननी के क्रोड़ में आ गया । उनके सहयोगी भी कालान्तर में संघ में प्रवेश पाकर संन्यास व्रत में दीक्षित हुए ।

रायपुर आश्रम की गतिविधियाँ द्रुत वेग से बढ़ने लगी । १४ नवम्बर १९६९ को परमाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने आश्रम में "श्रीरामकृष्ण मंदिर" का शिलान्यास किया । उसके लिए धन एकत्रीकरण अभियान प्रारम्भ किया गया । सन् १९७४ में छत्तीसगढ़ भयानक सूखे की चपेट में आ गया । लोग गाँव छोड़कर भागने लगे । भूख से मरने का भी समाचार आने लगा । आत्मानन्दजी ने मंदिर निर्माण का कार्य रोककर २ अक्टूबर, १९७४ से राहत कार्य प्रारम्भ किया जो पौने दो

वर्षों तक चला तथा उसमें साढ़े पाँच लाख रुपये से भी अधिक राशि खर्च हुई। मंदिर निर्माण कोष का सारा पैसा राहत कार्य में व्यय हो गया। आत्मानन्दजी का कहना था कि ठाकुरजी की इच्छा होने पर वे मंदिर निर्माण के लिए आवश्यक धनराशि जुटा देंगे। और हुआ भी वही मंदिर निर्माण में पैसे की कोई कमी नहीं हुई। २ फरवरी १९७६ को परमाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने "रामकृष्ण मंदिर" की प्राण प्रतिष्ठा की।

स्वामी आत्मानन्द का कार्यक्षेत्र अबतक और भी व्यापक हो गया था। देश के बिभिन्न भागों से उनके पास आमंत्रण आते थे। फलस्वरूप उनकी व्यस्तता बढ़ती जा रही थी। उनकी सतत् प्रेरणा तथा प्रभावी प्रवचनों के फलस्वरूप मध्यप्रदेश के विभिन्न स्थानों में आश्रमों का निर्माण हुआ, यथा - भोपाल, इन्दौर, ओंकारेश्वर, रतलाम, रींवा, झाबुआ, जबलपुर, ग्वालियर, बैतुल, पंखाजुर, अमरकंटक, बिलासपुर, बरबन्दा, भिलाई, अम्बिकापुर। इसी प्रकार उनके मार्ग-दर्शन में महाराष्ट्र में अमरावती, अकोला, गोंदिया, बुलढाणा, शेगांव, तथा औरंगाबाद आदि छः स्थानों में, उड़ीसा में राउरकेला तथा उमरकोट एवं बिहार में छपरा आदि स्थानों में आश्रमों की स्थापना हुई। युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण, श्रीमांसारदादेवी तथा युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द के प्रति एकान्तिक समर्पण का ही परिणाम था कि आत्मानन्द जी निःस्वार्थ भाव से इन आश्रमों का संचालन करते रहे। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का प्रचार-प्रसार जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने दैवी स्वरूप को पहचान सके तथा शिव-ज्ञान से जीव-सेवा करके धन्यता लाभ कर सके, यही इन आश्रमों का उद्देश्य रहा है। यह उनका अकृत्रिम प्रेम था जो इन आश्रमों के भक्तों के हृदय में त्याग और सेवा की भावना की वृद्धि कर उन्हें जन कल्याण के कार्य में प्रेरित करता रहा है।

सन् १९८५ में उन्होंने मध्यप्रदेश के बस्तर जिले की अत्यन्त पिछड़ी जाति "माड़िया" के उत्थान के लिए नारायणपुर में "वनवासी सेवा प्रकल्प" का कार्य हाथ में लिया। उनके कष्ट, उनकी पशुवत अवस्था तथा सभ्य समाज द्वारा उनके शोषण को देख उनके बीच कार्य करने की उनकी वर्षो पुरानी इच्छा थी। उनकी इस बारे में रामकृष्ण मठ और मिशन के महा-सहसचिव स्वामी आत्मस्थानन्दजी से चर्चा होने पर उन्होंने यह कार्य करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया। शासन द्वारा इस कार्य के लिए ४२ एकड़ जमीन प्रदान की गयी तथा पंचवर्षीय योजना के रूप में सवा दो करोड़ रुपये का अनुदान भी स्वीकृत किया गया। २ अगस्त १९८५ को वहाँ आश्रम का प्रारम्भ एक टिन शेड में किया गया। पांच वर्षों के भीतर ही अपनी प्रचण्ड इच्छा शक्ति, अथक प्रयास और अटूट लगन के फलस्वरूप उन्होंने वनवासियों के उत्थान के लिए की गयी अपनी कल्पना को साकार रूप प्रदान कर दिया। इसके अन्तर्गत नारायणपुर में वनवासी लड़कों के लिए आवासीय विद्यालय- "विवेकानन्द विद्या पीठ" तीस शय्या वाला आधुनिक उपकरणों से युक्त चिकित्सालय --- "विवेकानन्द आरोग्यधाम", विवेकानंद चल चिकित्सालय, वनवासी युवकों को विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षित करने के लिए 'विवेकानंद वनवासी युवा प्रशिक्षण केन्द्र' तथा वनवासी लोगों को दैनिक आवश्यकता की चीजें उचित मूल्य में उपलब्ध कराने के लिए "उचित मूल्य क्रय-विक्रय केन्द्र" स्थापित हुए। इसके अतिरिक्त अबूझमाड़ के भीतर ५ गाँवों में आश्रम विद्यालय, चिकित्सा केन्द्र तथा उचित मूल्य दुकानों की स्थापना की गयी। विवेकानंद विद्यापीठ के छात्रों ने विगत तीन वर्षों से (८७-८८, ८८-८९, तथा ८९-९०) की प्राथामिक प्रमाण-पत्र परीक्षा में पूरे बस्तर जिले में प्रावीण्य सूची में स्थान प्राप्त करके जो कीर्तिमान स्थापित किया इसके पीछे

आत्मानंदजी की सतत् प्रेरणा ही कार्य करती रही थी।

"वनवासी सेवा प्रकल्प" की प्रथम पंचवर्षीय योजना समाप्ति पर थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रारूप मध्यप्रदेश शासन से स्वीकृत कराकर वे भोपाल से लौट रहे थे तब राजनांदगाँव से १७ कि० मी० पहले कोहका नामक ग्राम के पास उनकी जीप के ५-६ बार पलटा खा जाने के फलस्वरूप उनका देहावसान हो गया। पर इतना जबरदस्त आघात पाने के बावजूद उनके चेहरे पर वेदना का कोई चिह्न नहीं था। एक पूर्ण शान्ति और स्वर्गीय मुस्कान उनके मुख मण्डल पर विराजमान थी। उन्होंने हँसते-हँसते मृत्यु का वरण कर लिया।

पर उन्हें अपनी मृत्यु का पता था। ग्यारह वर्ष पूर्व १९७८ में उन्होंने अपने पूर्वाश्रम की बहन लक्ष्मी तथा वहाँ पर उपस्थित अन्य लोगों के बीच कहा था कि वे १९९० नहीं देख पायेंगे। उस समय इसे किसी ने गम्भीरता से नहीं लिया। निधन के ठीक छः महीने पहले उन्होंने आश्रम की प्रबन्ध समिति के सदस्यों के सम्मुख कहा था कि उनके जीवन के ६० वर्ष पूरे नहीं हो पायेंगे। सदस्यों ने स्तंभित हो कहा था कि आपको क्या हुआ है जो आप ऐसी बातें कर रहे हैं। उन्होंने वातावरण को हल्का करते हुए मुस्कुराते हुए कहा था कि मुझे मालूम है कि मैं कब तक रहूँगा और इसीलिए अपने अन्तिम दिनों में वे अपने कार्य को पूर्ण रूप देने में अत्यन्त व्यस्त हो गये थे। यहाँ तक कि दिन के २४ घन्टे भी उनके लिए पूरे नहीं होते थे। जाने के पूर्व वे अपना सारा कार्य इस प्रकार सम्पादित करके गये जिससे किसी को कहीं कोई असुविधा न हो। यहाँ तक कि पिछले रविवासरीय प्रवचन में उन्होंने "विवेक चूड़ामणि" के कितने श्लोकों तक की व्याख्या की है यह भी लिखकर रखा था।

रायपुर में व्यतीत किये अपने तीस वर्ष के अल्प समय (१९५९-१९८९) में उन्होंने जो कार्य सम्पादित किया वह अपूर्व था। रायपुर और नारायणपुर के आश्रमों के साथ ही मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और बिहार के २५ विभिन्न आश्रम केन्द्रों का कुशल संचालन करते हुए उन्होंने भारत के विभिन्न नगरों का भ्रमण किया था जहाँ उन्होंने अपने व्याख्यानों और प्रवचनों के माध्यम से भारत की आध्यात्मिक सम्पदा वेद, उपनिषद, रामायण, गीता तथा भागवत के प्रचार और प्रसार के साथ ही साथ युगावतार श्रीरामकृष्ण और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द के नवजीवन-उन्मेषकारी विचारों का जन साधारण के बीच प्रतिपादन किया था। वे हिन्दी के अप्रतिम वक्ता थे, साथ ही साथ उनका अंग्रेजी और बंगला भाषा में भी समान अधिकार था। ३०-३५ वर्ष की अल्प आयु में ही उन्होंने अपनी वाग्मिता, विद्वत्ता तथा धर्म और दर्शन को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिपादित करने की अपूर्व क्षमता के फलस्वरूप सारे भारत में महान प्रसिद्धि अर्जित की थी। दक्षिण भारत के विभिन्न नगरों में अंग्रेजी भाषा में रामचरितमानस की सुललित व्याख्या कर उन्होंने उसे वहाँ लोकप्रिय बनाया था। वे कलकत्ता, बम्बई तथा दिल्ली जैसे महानगरों में आभिजात्य वर्ग द्वारा आयोजित प्रवचनों में शत-शत पुरुषों और महिलाओं द्वारा प्रशंसित और अभिनन्दित होते थे तथा वे इस प्रशंसा और अभिनन्दन को बड़ी विनम्रता और सौजन्य के साथ ग्रहण करते थे। अभिमान तो उन्हें छू तक नहीं गया था। सन्यासी काम, क्रोध और लोभ पर विजय प्राप्त कर सकते हैं पर प्रसिद्धि और लोकैषणा को छोड़ पाना उनके लिए भी कठिन होता है। स्वामी आत्मानन्द इसके अपवाद स्वरूप थे। लेखक को अनेक बार उनके साथ ऐसे कार्यक्रमों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। उसने देखा था कि किस तरह वे प्रवचन के पश्चात भावाभिभूत श्रोताओं द्वारा प्रशंसित और

अभिनान्दित हो रहे हैं तथा उसके बाद ही आश्रम में लौटकर वे विवेकज्योति पत्रिका अथवा स्मारिका के फ्रूफ देखने जैसे नीरस कार्य में दत्त चित्त से लग गये हैं। उनके पास मानो अपनी कीर्ति और प्रसिद्धि की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं था। उनका अपने मन पर अपूर्व अधिकार था। इसी के फलस्वरूप वे नीरस से नीरस कार्यों में भी अपने मन को इच्छानुसार केन्द्रित करने में समर्थ होते थे। उनका छोटा कार्य भी परिमार्जित और त्रुटिहीन होता था। वे अपना प्रत्येक कार्य स्वयं ही करते थे। किसी से अपनी व्यक्तिगत सेवा लेना उन्हें तनिक भी पसन्द नहीं था। वे कई बार कहा करते थे कि मैं ठाकुर से यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे कभी किसी की सेवा न लेनी पड़े। और सचमुच अन्त तक उन्होंने किसी की सेवा नहीं ली और न ही किसी को अपने लिए कोई कष्ट उठाने दिया। इसके विपरीत उन्होंने यथासाध्य सबकी सहायता की। उनके पास प्रतिदिन अनेक पत्र आते। और वे स्वयं ही उनका उत्तर लिखते। सतत कर्मशीलता ही उनके जीवन का मूलमंत्र था। वे गीता के अप्रतिम प्रवक्ता थे। उनका जीवन गीतोक्त "कर्मयोग" पर ज्वलन्त भाष्य था। गीता का यह श्लोक—

कर्मण्य कर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत ॥ ४/१८

'जो कर्म में अकर्म देखता है तथा अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान है, वह योगी है और समस्त कार्यों को करने वाला है। उनके जीवन में पूरी तरह व्यवहृत हुआ था।

विभिन्न आश्रमों का संचालन और मार्ग-दर्शन करते हुए भी वे पूर्णरूपेण अनासक्त थे। कर्त्तापन का तनिक भी अहंकार उनके भीतर नहीं था। उनकी इस अनासक्ति तथा ममत्वहीनता का तात्पर्य कठोरता और निर्ममता नहीं था। उन्होंने रायपुर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था जहाँ उनके पूर्वाश्रम के निकटतम स्वजन और मित्र थे। सभी के प्रति उनका व्यवहार प्रेम और आत्मीयता से पूर्ण होने के बावजूद भी वे सर्वताभावेन् अनासक्त थे। इस अनासक्ति के पीछे उनकी प्रत्येक कर्म में भगवत्समर्पित बुद्धि थी। जैसा कि गीता में कहा गया है —

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ५/१०

'जो समस्त कर्मों को ब्रह्म में अर्पण करके अनासक्त हो कर्म करता है, वह जल में कमल पत्र की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता।"

उनकी इस भगवत्समर्पित बुद्धि और समदृष्टि ने जिज्ञासुओं तथा धर्म-पिपासुओं को अपनी ओर आकृष्ट किया था। शत-शत नवयुवकों के वे प्रेरणा-स्रोत थे। तीस से भी अधिक नवयुवकों ने उनके पवित्र त्यागमय जीवन से प्रेरित होकर अपने जीवन को रामकृष्ण मठ में शिव ज्ञान से जीव सेवा के महान आदर्श के लिए उत्सर्ग किया। यद्यपि पूर्वाश्रम के तीन अनुज उनके साथ आश्रम में रहते पर उनमें अपने पराये का तनिक भी भेद नहीं था। उनकी इस समदृष्टि के फलस्वरूप समाज के सभी वर्ग के लोग उनसे मिलकर अत्यन्त आत्मीयता का अनुभव करते। गीता का यह श्लोक——

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्याद ब्रम्हाणि ते स्थिताः॥
५/१९

"जिनका मन समत्व भाव में स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही संसार जीत लिया गया है। चूँकि ब्रह्म सभी दोषों से रहित और सब में समान है इसलिए वे समदर्शी पुरुष ब्रह्म में ही अवस्थित हैं।" उनके जीवन में पूर्णरूपेण रूपायित हुआ था।

वे विलक्षण मेधा सम्पन्न थे। उनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीक्ष्ण थी। जब वे रामकृष्ण मठ और

मिशन के परमाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी, स्वामी गम्भीरानन्दजी तथा स्वामी भूतेशानन्दजी तथा परमोपाध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्दजी के सारगर्भित, विद्वत्तापूर्ण एक-डेढ़ घन्टे के अंग्रेजी में प्रदत्तव्याख्यान को सुनकर तत्क्षणात् उसका सुललित प्रांजल हिन्दी में शब्दशः अनुवाद करके प्रस्तुत करते तो श्रोतागण आश्चर्याभिभूत हो जाते। उनमें यह एक विलक्षण दैवी प्रतिभा थी।

वे कलम के भी धनी थे। अध्यात्म, दर्शन तथा अन्य सामयिक विषयों पर उनके लेख तथा आकाशवाणी में दी गयी सैकड़ों वार्ताएँ इसकी परिचायक हैं। गीता पर दिये गये उनके २१३ प्रवचनों में से प्रथम ७८ प्रवचनों का संग्रह- गीता तत्व चिन्तन के नाम से दो खण्डों में प्रकाशित हुआ है जो उनकी गहन आध्यात्मिक पैठ तथा प्रकाण्ड ज्ञान को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी और बंगला भाषा के अनेक ग्रंथों का अनुवाद किया है जिनमें भारत में शक्ति पूजा, मन और उसका निग्रह, माँ सारदा, रामकृष्ण संघ आदर्श और इतिहास आदि प्रमुख हैं। सुप्रसिद्ध मानस-मर्मज्ञ पंडित रामकिंकर उपाध्याय के प्रवचनों का सम्पादन उन्होंने मानस मन्थन के दो खण्डों में श्रीराम चरित तथा हनुमान चरित के रूप में किया था।

उनका प्रत्येक कार्य रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित था। विवेकानन्दजी की तेजस्विता उनमें कूट-कूट कर समायी हुई थी। दीन और दुखियों के प्रति उनके मन में बड़ी पीड़ा थी जिसे दूर करने के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहे। आदिवासियों के उत्थान के लिए उन्होंने 'अबूझ माड़ सेवा प्रकल्प' जैसी बृहत् योजना का हाथ में लेकर उसमें अपना शेष जीवन लगा दिया। देश के प्रति उनका प्रेम अतुलनीय था। भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के वे पुरोधा थे। सही मायने में वे विवेकानन्द समर्पित प्राण थे।

मन की शक्ति

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने 'आकाशवाणी' के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विभिन्न विषयों पर विचारोत्तेजक तथा उद्बोधक लेख लिखे थे जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय-समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। आकाशवाणी के रायपुर केन्द्र से प्रसारित प्रस्तुत लेख 'विवेक ज्योति' से साभार गृहीत है। सं०)

मनुष्य का मन अनन्त शक्तियों का कोष है। सामान्य रूप से मनुष्य के मन की असीम शक्तियों का बोध नहीं हो पाता। इसका कारण यह है कि मन साधारण स्थिति में अत्यन्त चंचल हुआ करता है। मन की शक्ति का ज्ञान तब होता है जब हम उसे एकाग्र करना चाहते हैं। ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र का प्रत्येक आविष्कार मन की एकाग्रता की स्थिति में ही सम्पन्न हुआ है। इसीलिए जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए मन को एकाग्रता पहली शर्त है। सामान्यतः जब व्यक्ति अपने मन को एकाग्र करने का आरम्भिक प्रयास करता है तो वह पाता है कि मन पहले की अपेक्षा और अधिक चंचल हो गया है। इससे वह घबराकर ऐसा प्रयास करना ही त्याग देता है। पर यह तो मन की प्रकृति ही है। जब हम मन को एकाग्र करने का प्रयास करते हैं तब हमें उसके वास्तविक स्वरूप की झलक मिलती है। साधारण तौर पर हमारा मन विचारों के सतत् प्रवाह के समान है। कल्पना कीजिए, एक धारा बह रही है। ऊपर से हमें उसकी शक्ति का पता नहीं चलता। पर जब हम उस धारा को बाँधने का प्रयास करते हैं, तब उसकी अकल्पित शक्ति प्रकट होती है। बाँध बह जाते हैं और ऐसा लगता है कि धारा में इतनी ताकत होने की हमने कल्पना तक नहीं की थी। उसी प्रकार जब हम मन को एकाग्र करते हैं तो वह मानो मन के बाँधने के समान है और इस प्रयास में मन अधिक क्षुब्ध हो उठता है। लगता है, मानो वह इतना चंचल कभी नहीं था।

कल्पना कीजिए, एक सरोवर है जिसका जल निर्मल दीखता है। पर उसके जल में इतना कीचड़ भरा हुआ है कि हम एक कंकड़ सरोवर में डालते हैं तो उतने से ही धीरे-धीरे आसपास का पानी गँदला जाता है। मान लीजिए, हम इस सरोवर से कीचड़ को साफ करना चाहते हैं। हमने कीचड़ निकालना शुरू किया। पानी गँदला हो जाता है। जैसे-जैसे हम कीचड़ निकालते जाते हैं वैसे-वैसे सरोवर का जल अधिकाधिक मटमैला होता जाता है। यदि हम सोचें कि इससे तो पहले ही अच्छा था जब सरोवर का जल इतना गँदला तो न था, और ऐसा सोचकर कीचड़ निकालना बन्द कर दें, तो धीरे-धीरे सरोवर का जल फिर से निर्मल तो हो जाएगा, पर उसकी निर्मलता का कोई मतलब नहीं होगा, क्योंकि एक छोटा-सा कंकड़ उसके तल के कीचड़ को ऊपर कर सकता है। पर यदि हमने जल के गँदले होने की परवाह न कर, कीचड़ निकालना जारी रखा, तो एक दिन आयेगा जब सरोवर का सारा कीचड़ साफ हो जायेगा और उसके बाद जल को जो निर्मलता प्राप्त होगी वह यथार्थ की होगी। क्योंकि तब सरोवर में यदि हाथी भी उतर जाये तो भी जल गँदला नहीं होगा।

हमारा मन भी उसी सरोवर के समान है जिसके तल में जल-जन्मान्तर के गन्दे संस्कार भरे हुए हैं। ऊपर-ऊपर से यह निर्मल-सा लगता है पर एक छोटा-सा दृश्य, एक तनिक-सा विचार हमारे मन के कूड़ा-कर्कट को बाहर प्रकट कर देता है। जब ध्यान आदि साधना के सहारे हम मन की इस संचित गंदगी को दूर करने का प्रयत्न करते हैं, तो सरोवर के जल के समान मन बड़ा गन्दा दिखायी पड़ता है, क्योंकि उसमें बड़े भयानक-भयानक विचार उठते रहते हैं। पर हम डरें नहीं। यही समझें कि हम ठीक रास्ते पर हैं। जान लें कि नाली साफ हो रही है। अभ्यास को न त्याग कर उसको तीव्र कर दें। धीरे-धीरे हम देखेंगे कि हमारा मन पहले की अपेक्षा अब काफी ठीक हो चला है।

ऐसे निर्मल मन को सहज ही एकाग्र किया जा सकता है। एकाग्र मन ठीक उसी प्रकार रहस्यों का भेदन करता है, जिस प्रकार शक्ति शाली क्ष-किरणें धातुओं के आवर्त को भेद जाया करती हैं। प्रकृति-राज्य के रहस्य एकाग्र मन के समक्ष सहज ही प्रकट हो जाते हैं। एकाग्र मनवाला व्यक्ति जिस वस्तु पर भी चिन्तन करता है वह तत्काल उसके समाधान को प्राप्त कर लेता है। ऐसे मन के द्वारा यदि व्यक्ति स्वयं अपने अस्तित्व पर विचार करता है तब उसे स्वयं की प्रच्छन्न अनन्त सम्भावनाओं का बोध सहज ही हो जाता है।

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

१.	एक भक्तिमती महिला	—	इलाहाबाद	३,९९० रुपये
२.	एक शुभैषी	—	पुणे	२०० रुपये
३.	श्री एस० के० चक्रवर्ती	—	इलाहाबाद	२७ रुपये
४.	श्री पृथ्वीराज शर्मा	—	ठण्डी, राजस्थान	२०० रुपये
५.	श्री दीपक श्रीवास्तव	—	पटना (बिहार)	१०१ रुपये
६.	एक शुभ चिन्तक	—	इलाहाबाद	२५० रुपये
७.	भी० वी० उरकुडे	—	चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)	५० रुपये
८.	श्रीमती शान्ति देवी	—	इन्दौर (मध्य प्रदेश)	१०० रुपये
९.	श्री एस० डी० शर्मा	—	अहमदाबाद	३०१ रुपये
१०.	श्रीमती प्रभा भार्गव	—	बीकानेर (राजस्थान)	२०० रुपये

नरदेव श्रीरामकृष्ण (४)

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

अद्वयतत्व समाहित चित्तम्

प्रस्तुत छन्द के बाकी तीन विशेषण श्रीरामकृष्ण के नरश्रेष्ठतत्व का प्रतिपादन करते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अवतार देवत्व के कारण आराध्य एवं उपास्य होते हैं और श्रेष्ठ नरत्व के कारण अनुकरणीय होते हैं। श्रेष्ठ मानव के रूप में वे एक आदर्श जीवन व्यतीत करते हैं जो संदेश तथा तत्काल विशेष के लिए उदाहरण स्वरूप होता है। उन्हीं को देखकर तथा उन्हीं की तरह अपने जीवन का गठन कर मानव भी श्रेष्ठ बन सकता है।

रामकृष्ण मठ को स्थापना के बाद मठ के संन्यासियों को सम्बोधित करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि इस मठ का उद्देश्य मनुष्य निर्माण है। मनुष्य कौन है? स्वामीजी के अनुसार जिसमें सिंह की सी दृढ़ता और नारी का सा हृदय हो; उच्चतम आदर्शवाद के साथ ही साथ कुशल व्यावहारिकता हो। जो ध्यान भी कर सके और खेती भी; शास्त्रों की आलोचना भी कर सके और खरीदी-बिक्री भी। श्रेष्ठ मानव वह है जिसका हृदय बुद्ध की तरह विशाल हो और बुद्धि शंकराचार्य की तरह तीक्ष्ण। तात्पर्य यह है कि स्वामी जी के अनुसार वही व्यक्ति श्रेष्ठ मानव है जिसमें ज्ञान भक्ति कर्म और योग चारों का पूर्ण संतुलित और समन्वित विकास हो। और इस आदर्श के मूल विग्रह हैं श्रीरामकृष्ण। इनमें ये चारों बातें अद्भुत मात्रा में विकसित एवं सन्तुलित रूप से विद्यमान थीं। इसी बात को स्वामीजी ने इस स्तोत्र की तीन पंक्तियों में व्यक्त किया है।

उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ है: "जिसका चित्त वेदान्तोक्त ब्रह्मात्मैक्य रूप अद्वय तत्व में समाहित है।" अद्वय तत्व ज्ञान योग का विषय है और समाधि का सम्बन्ध योग से है। अतः यह पंक्ति श्रीरामकृष्ण में ज्ञान और राजयोग के पूर्णत्व को प्रदर्शित करती है।

अद्वय तत्व:

वेदान्त का चरम सिद्धान्त है—

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।"

इस सिद्धान्त की साक्षात् अपरोक्ष अनुभूति के लिए गुरुमुख से अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि आदि महा वाक्यों को सुनकर उसका मनन और निदिध्यासन करना होता है। विवेक, वैराग्य षट् सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व सम्पन्न उत्तम अधिकारी में यह उपदेश शीघ्र फलित होता है। वेदान्त में अधिकारी भी दो प्रकार के कहे गये हैं: कृतोपास्ति और अकृतोपास्ति। जिन्होंने शास्त्रोक्त विधिपूर्वक नित्यनैमित्तिक कर्मों के द्वारा अपने चित्त के मल का तथा उपासना द्वारा विक्षेप का नाश कर दिया है ऐसे उत्तम अधिकारी कृतोपास्ति कहे जाते हैं। श्री तोतापुरीजी से महावाक्योपदेश प्राप्त करने के पूर्व श्रीरामकृष्ण माँ जगदम्बा की प्रतीकोपासना में सिद्ध हो चुके थे। उनका मन उपासना की चरम उपलब्धि में इष्ट का दर्शन कर चुका था। अतः तोतापुरीजी ने देखते ही उन्हें वेदान्त के उत्तम अधिकारी के रूप में पहचान लिया था।

गुरु श्री तोतापुरी से संन्यास में दीक्षित होने

के बाद श्रीरामकृष्ण महावाक्य श्रवण करके उस पर ध्यान करने लगे लेकिन माँ जगदम्बा की चिरपरिचित मूर्ति उनके मन पर उभरने लगी। अन्त में उन्होंने उसे 'ज्ञान खड्ग' से काट दिया और तब उनका मन निर्विकल्प समाधि में लीन हो गया। जिस निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करने में स्वयं तोतापुरी जी को दीर्घ चालीस वर्षों की कठोर साधना करनी पड़ी थी, उसे ही श्रीरामकृष्ण ने एक दिन में हो प्राप्त कर लिया और लगातार तीन दिन तक उसमें लीन रहे। इस समाधि में ब्रह्मात्मैकत्व का साक्षातअपरोक्ष ज्ञान होता है।

समाहित चित्तम : --

यह उक्ति चित्त की एकाग्रता की द्योतक है। योग सूत्रों के अनुसार धारणा, ध्यान और समाधि, अंतरंग योग कहे जाते हैं। पातंजल योग सूत्रों में कई प्रकार की समाधियों का वर्णन है जो एकाग्रता के विषय या प्रत्यय पर निर्भय करती हैं। संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात ये दो मुख्य भेद हैं। वेदान्त में ज्ञान की प्रक्रिया में समाधि को श्रवण, मनन और निदिध्यासन की अन्तिम परिणति के रूप में स्वीकार किया गया है। ये समाधियाँ सविकल्प और निर्विकल्प दो प्रकार की हो सकती हैं। योग द्वारा प्राप्त समाधि को निरोध समाधि और श्रवण, मनन निदिध्यासन से प्राप्त समाधि को ज्ञान समाधि कहा जाता है।

श्रीरामकृष्ण अद्वैततत्व का साक्षात् अपरोक्ष अनुभव करने वाले महान ब्रह्मज्ञानी ही नहीं थे, वे एक उच्चकोटि के सिद्ध योगी भी थे। योग के सभी अंगों यथा यम, नियम आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार में वे पूर्ण प्रतिष्ठित थे। उन्होंने आसन-प्राणायाम-प्रधान हठयोग का भी कुछ काल तक अभ्यास किया था। जब वे ध्यान करने बैठते थे तो उनके हाथ-पैरों के विभिन्न जोड़ खट-खट करते हुए बन्द हो जाया करते थे, और तब वे काष्ठवत् लम्बे समय तक एक ही आसन में बैठे रहते थे। इस हठ योग की साधना के समय ही एक बार उनके तालु से रक्त प्रवाहित होने लगा था जिससे वे जड़ समाधि में लीन होने से बच गये। इसी तरह, जब वे मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करते थे तो एक त्रिशूलधारी संन्यासी को सामने खड़ा देखते थे; जो उनके मन को भय दिखाता था कि अगर वह एकाग्र न हुआ तो त्रिशूल भोंक दूंगा। उनकी एकाग्रता इतनी प्रगाढ़ थी कि उन्हें मृत समझकर पक्षी उनके सिर पर बैठ कर उनकी जटा से दाने चुगते थे।

श्रीरामकृष्ण के लिए समाधि की अवस्था उतनी ही स्वाभाविक थी जितनी हमारे लिए जाग्रतावस्था है। जैसा कि कहा जा चुका है, पहले वे तीन दिन तक निर्विकल्प समाधि में विलीन रहे थे। उसके बाद लगभग छः माह तक लगातार निर्विकल्प समाधि में डूबे रहे। इस समय एक संन्यासी उन्हें लकड़ी से मारमार कर थोड़ी बाह्य चेतनावस्था में लाकर किसी तरह उनके मुँह में खाना डाल देता था। इसी तरह उनका शरीर जीवित रह सका था। धर्म इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना है। इसके बाद तो समाधि उनके लिए अत्यन्त सहज हो गयी थी। वे इच्छानुसार समाधि में लीन हो सकते थे। यही नहीं, अपने मन को समाधि में विलीन होने से रोकने और बाह्य चेतना के स्तर पर बनाये रखने के लिए उन्हें प्रयत्न करना पड़ता था।

परम्परागत वेदान्त सिद्धान्त की मान्यता के अनुसार मात्र निर्विकल्प समाधि को ही ज्ञान की चरमावस्था या कसौटी नहीं माना जाता। व्युत्थान दशा में व्यक्ति के आचरण से इसका निर्णय होता है। ऐसे व्यक्ति को जीवनमुक्त कहा जाता है। उसको जगत् सदा के लिए मरीचिकावत् असत् प्रतीत होता है। वह सर्वत्र ब्रह्म और स्वयं को सबमें देखता है। श्रीरामकृष्ण की भी यही स्थिति थी। वे कहते थे कि मैं सभी को चैतन्य

देखता है—मानों सभी मोम के बने हों, या शरीर रूपी खोल के भीतर से चैतन्य हिल डुल रहे हों। गले के कैंसर से पीड़ित होने पर जब वे अपने मुँह से कुछ खा नहीं सकते थे, उस समय उनकी यह उक्ति कि मैं भक्तों के मुँह से खाता हूँ, उनके अद्वैत ज्ञान में दृढ़ प्रतिष्ठा की सूचक है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि श्रीरामकृष्ण ने ज्ञान और योग की चरम अवस्थाओं को प्राप्त कर संसार के सभी साधकों के सम्मुख उनकी सत्यता ही सिद्ध नहीं की थी बल्कि एक अनुकरणीय आदर्श भी प्रस्तुत किया था।

स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द तथा काली कमलीवाले

लेखक स्वामी विमलात्मानन्द
अनुवादिका—डा० नन्दिता भार्गव

काली कमली वाले की धर्मशालाएँ तथा अन्न-क्षेत्र तीर्थ यात्रियों में सुपरिचित हैं। तपोभूमि हिमालय के अंक में दुर्गम तीर्थ क्षेत्र हैं। उन सब स्थानों में संन्यासी हो या गृहस्थ तीर्थ यात्री सभी के लिए पहुँचना जैसा कठिन था, वैसी ही आश्रय की समस्या भी तीव्र थी। सर्वप्रथम इस समस्या का अन्तःकरण से अनुभव किया था एक अकिंचन संन्यासी ने। उन्हीं की अथक चेष्टा से तीर्थ स्थानों में धर्मशालायें और मुफ्त भोजनालय स्थापित हुए यह निर्धन संन्यासी थे स्वामी विशुद्धानन्द। परन्तु स्वामी विशुद्धानन्द बाबा काली कमली वाले के नाम से ही परिचित और प्रसिद्ध हुए।

बाबा काली कमलीवाले के साथ स्वामी विवेकानन्द का एक बार साक्षात्कार हुआ था। अपने द्वारा प्रतिष्ठित धर्मशालाओं तथा अन्न क्षेत्रों को उन्होंने रामकृष्ण संघ को हस्तांतरित कर देने की इच्छा व्यक्त की थी। परन्तु स्वामी विवेकानन्द की प्रामाणिक जीवनियों में इस विषय में कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। यहाँ तक कि श्रीरामकृष्ण के अन्यान्य पार्षदों से सम्बन्धित पुस्तकों में भी इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु बाबा काली कमलीवाले की जीवनी में तथा श्रीरामकृष्ण वचनामृत के लेखक श्री 'म' के जीवन वृतान्त में इस विषय का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त, स्वामी निर्लेपानन्द द्वारा संग्रहीत "स्वामीजीर स्मृति संचयन" नामक बगला पुस्तक में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। अतः इस विषय में ही आलोचना करने का प्रयास कर रहा हूँ।

काली कमलीवाले बाबा का पूर्वाश्रम का नाम विसवा सिंह था। पंचाब के गुजरांवाला जिले के कीटना-जलालपुर नामक गाँव के एक अभिजात वैश्य परिवार में उनका जन्म १८३१ ई० में हुआ था। वे अपने माता-पिता के द्वितीय पुत्र थे। पिता की एक मिठाई की दुकान थी। बचपन में इसी मिठाई की दुकान में काली कमली वाले कार्य करते थे। प्रारम्भ से ही विसवा में सद्गुणों का समावेश

था। सत्संग तथा साधु सेवा में उनकी अभिरुचि थी। सोलह वर्ष की आयु में निरुपाय होकर उन्हें विवाह करना पड़ा। वे तीन पुत्रों के पिता भी हुए, परन्तु संसार बन्धन में अधिक समय तक नहीं रहे। प्रचण्ड वैराग्य के कारण उन्होंने, बत्तीस वर्ष की आयु में ही गृह त्याग दिया। १८६३ ई० में काशी में उन्होंने परमहंस तपोनिधि स्वामी शंकरानन्द से संन्यास की दीक्षा ली। संन्यासी बनने के पश्चात् विसवा स्वामी विशुद्धानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।[1]

संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् गुरु के आदेशानुसार तीन वर्ष तक निर्लिप्त होकर विशुद्धानन्द को गृहस्थाश्रम में रहना पड़ा था। तत्पश्चात् उन्होंने सदा के लिए गृहस्थाश्रम त्याग दिया और गुरु आश्रम में रहकर साधना भजन तथा शास्त्राध्ययन करने लगे। वहाँ से निकल कर वे तीर्थ स्थानों की परिक्रमा करने लगे। उन्होंने हरिद्वार, ऋषिकेश, केदार बद्री, यमुनोत्री, गंगोत्री आदि विपद संकुल स्थानों में गृहस्थ तथा संन्यासी यात्रियों के अवर्णनीय कष्टों को प्रत्यक्ष रूप से देखा। जंगली तथा हिंसक जानवरों से घिरे ऋषिकेश में झोपड़ियों में तपस्यारत साधुगण कन्दमूल, जंगली फल और बेलपत्ता खाकर ही रह जाते थे। यह सब देखकर विशुद्धानन्दजी विचलित हुए। उन्होंने संकल्प किया कि वे तीर्थ यात्रियों की सेवा और आश्रय के लिये व्यवस्था करेंगे।[2]

विशुद्धानन्दजी ने अपने संकल्प के विषय में अनेक धनाढ्य व्यक्तियों से बातचीत की। इस कार्य में अर्थ की आवश्यकता थी, अतः कोई आगे नहीं बढ़ा। विशुद्धानन्द निराश हो जाने वाले नहीं थे। कलकत्ते में एक सेठ की आर्थिक सहायता से उन्होंने ऋषिकेश में सन् १८८३ ई० में सर्वप्रथम कार्य आरम्भ कर दिया। वे यात्रियों को भुना हुआ चना और गुड़ देने लगे। बाद में कलकत्ते के अनेक सेठ विशुद्धानन्दजी की सहायता के लिए आगे आये। सिंधाना के धनी देवी सहाय टिबड़े ने दान दिया। ऋषिकेश के भरत-मन्दिर के महंत राम रतनदासजी ने भी सहायता करना प्रारम्भ कर दिया। विशुद्धानन्दजी का संकल्प साकार हुआ।[3] भारत के सभी तीर्थ स्थानों में धर्मशालायें और अन्न क्षेत्र प्रतिष्ठित हुए।[4] साधुगण निश्चित होकर साधन भजन में लीन हुए। तीर्थ यात्रियों को आश्रय और भोजन मिला। अब आनन्द पूर्वक वे तीर्थ यात्राएँ सम्पन्न करने लगे।

स्वामी विशुद्धानन्द काले रंग का कम्बल पहने रहते थे। कालेकम्बल पर ही सोते थे। वे सर्वदा काले रंग का कम्बल ही काम में लाते थे। अतः लोग उन्हें काली कमलीवाले कहने लगे। इस नाम से ही वे समग्र भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गये। उनका प्रतिष्ठान "काली कमलीवाला पंचायत क्षेत्र" के नाम से जाना जाने लगा।[5]

स्वामी विवेकानन्द की "परिव्राजक" अवस्था के समय उनका काली कमली वाले के साथ साक्षात्कार हुआ था किन्तु वह वर्ष कौन था? १८८८ ई० में स्वामीजी अपने शिष्य सदानन्द के साथ कुछ समय तक ऋषिकेश में रहे थे। उनकी इच्छा थी कि वे दीर्घकाल तक वहाँ रहकर भजन साधन में ही समय व्यतीत करें, परन्तु स्वामी सदानन्द की भीषण अस्वस्थता तथा स्वयं के मलेरिया ग्रस्त हो जाने पर वे उस वर्ष के अन्तिम भाग में बराहनगर मठ लौट आये थे।[6] नवम्बर १८९० ई० में स्वामीजी दूसरी बार ऋषिकेश आये। संग में गुरुभाईगण--स्वामी अखण्डानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी तुरीयानन्द तथा स्वामी कृपानन्द (बैंकुठ नाथ सान्याल, जिन्होंने कुछ समय पश्चात् संन्यास जीवन को त्याग संसार आश्रम को पुनः अपना लिया था। ये श्रीरामकृष्ण के गृहस्थ शिष्य थे।) वहाँ सभीजन तपस्या में मग्न हो गये। स्वामीजी ने ऋषिकेश के भोजनालय का उल्लेख किया है। परन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि वह भोजनालय काली कमली वाले का था या नहीं। उस समय अवश्य ही उक्त अन्नक्षेत्र के अलावा और कोई भी

भोजनालय ऋषिकेश में नहीं था। अतः स्वामीजी द्वारा उल्लिखित वह अन्नक्षेत्र काली कमलीवाला अन्नक्षेत्र ही होना चाहिए। इस दो बार में, किसी एक समय स्वामीजी के साथ काली कमलीवाले का साक्षात्कार हुआ होगा। फिर भी दूसरी बार के समय साक्षात्कार का होना अधिक उचित होगा। कारण इस बार स्वामीजी ने ऋषिकेश में दीर्घकाल तक अवस्थान किया था। उन्होंने स्वयं ही बतलाया कि उस समय वे अनेक साधुओं से मिले थे।[7] श्री "म" ने भी कहा, 'सुनने में आता है कि काली कमली वाले बाबा स्वामीजी को पहचान गये थे। यद्यपि यह घटना उनके अमेरिका जाने के पहले की है। उस समय वे ऋषिकेश में ही थे।"[8]

श्री "म" और भी बतलाते हैं, "विवेकानन्द काली कमली वाले की बातें किया करते थे। कहते थे कि ठीक ठीक निष्काम कर्म करते केवल मात्र उस एक साधु को ही देखा है।[9] श्री "म" की उपर्युक्त बातों से हम जान पाते हैं कि स्वामीजी अपने गुरुभाइयों से काली कमली वाले के विषय में बात किया करते थे।[10] इससे इस बात का प्रमाण भी मिलता है कि उनका साक्षात्कार तथा परिचय काली कमली वाले से हुआ था अन्यथा वे परवर्ती काल में बाबा का उल्लेख न करते।

स्वामीजी के अनुज महेन्द्र नाथ दत्त ने लिखा है, "१८९० ई० में तथा उससे पूर्व भी हरिद्वार, कनखल, ऋषिकेश आदि बहुत ही दुर्गम स्थान थे। ऋषिकेश में काली कमलीवाले के तथा एक दो और अन्नक्षेत्र थे। बाकी दो भोजनालय समय समय पर बन्द हो जाते थे। केवल कमली बाबा का सत्र ही बारह महीने खुला रहता था। वे जैसे त्यागी वैसे ही कर्मवीर थे। ऋषिकेश में अवस्थान करते समय नरेन्द्र ने कमली बाबा के भाव को विशेष रूप से हृदयंगम किया था। जब वे अमेरिका से लौटे तो अपने अभिनन्दन का उत्तर देते समय उन्होंने कमली वाले बाबा का उल्लेख किया था।[11]

काली कमली वाले की प्रशंसा करते हुए स्वामीजी ने कहा, "समग्र भारत में काली कमली वाले बाबा की भाँति किसी कर्मयोगी को नहीं देखा है। देश के कल्याण के लिए ऐसे ही कर्मठ महात्माओं की सबसे अधिक आवश्यकता है।"[12] श्री "म" ने काली कमली वाले के कर्मयोगी के रूप का सुन्दर चित्रण किया है। चन्दों से लाखों रुपये एकत्रित किये। उस धन से उत्तराखण्ड में मार्ग आदि बनवाये। मार्गों के बीच बीच में धर्मशालाएँ तथा सदाव्रत भोजनालय खुलवायें। ऋषिकेश में साधुओं के लिए अन्नक्षेत्र बना। स्वयं पानी भरते, आटा माड़ते, रोटियाँ पकाते, साधुओं को रोटियाँ देते - बाहर आकर साधुओं के साथ खड़े होकर रोटी की भी भिक्षा करते थे।"[13]

श्री "म" बताते हैं कि काली कमली वाले अपने द्वारा प्रतिष्ठित अन्न क्षत्रों का दायित्व स्वामीजी को देना चाहते थे।[14] स्वामी निर्लेपानन्द की पुस्तक "स्वामीजीर स्मृति सचयन' में भी इसका उल्लेख मिलता है।[15] इन सस्मरणों को सर्वप्रथम 'उद्बोधन' पत्रिका ने छापा था। काली कमली वाले कलकत्ते में बड़ बाजार के शिव प्रसाद झुनझुनवाला के घर आये थे। स्वामी त्रिगुणातीतानन्द ने उन्हें जाकर ले आने को कहा। काली कमली वाले स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी योगानन्द से मिलना चाहते थे। उस समय सब लोग बाग बाजार में श्रीमाँ सारदा देवी के सरकार बाड़ी लेन के किराये के मकान में रह रहे थे। स्वामीजी पश्चिम में थे। काली कमली वाले श्रीमाँ के निवास स्थान में आये। उस समय स्वामी ब्रह्मानन्द स्नान कर रहे थे। स्नान के पश्चात् मिलना हुआ। राजा महाराज बोले "मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप क्या पाओगे महाराज"? काली कमली वाले ने उत्तर दिया जो कुछ भी मिल जायेगा।" उन्होंने श्रीठाकुर का प्रसाद पाया था। उन्हें स्वामी योगानन्द

स्वामीजी के भाषणों को पढ़कर उनके भावार्थ को सुनाया।

उसके बाद ही काली कमली वाले ने स्वामी ब्रह्मानन्द को अपने द्वारा प्रतिष्ठित सभी अन्न क्षेत्रों के परिचालन का दायित्व अर्पण करना चाहा। इन प्रस्तावों को उस समय विदेश में रह रहे स्वामीजी को बतलाया गया। बाबा को शर्तों को स्वामीजी ने स्वीकार नहीं किया। अतः अधिग्रहण का कार्य नहीं हो सका।[16]

काली कमली वाले किस समय स्वामी ब्रह्मानन्द से बातचीत करने आये होंगे? १८९६ ई० के मई के महीने से पाँच छह मास तक श्रीमाँ सारदा देवी ने सरकार बाड़ी लेन में अवस्थान किया था। ब्रह्मानन्द, योगानन्द आदि दूसरी मंजिल में तथा श्रीमाँ तीसरी मंजिल में रहती थीं।[17] १८९६ में ही काशी में काली कमली वाले का देहान्त हो गया।[18] इन घटनाओं से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस नश्वर शरीर को त्यागने से पूर्व मई १८९६ ई० के पश्चात् ही किसी एक समय काली कमली वाले के साथ स्वामी ब्रह्मानन्द का साक्षात्कार हुआ होगा।

(बंगला पत्रिका उद्‌बोधन के जनवरी, १९९० अंक से साभार अनूदित।)

१. भारतेर साधक - शकरनाथ राय, प्रथम भाग पृष्ठ ४६८.

२. भारतेर साधक शंकरनाथ राय, भाग प्रथम, पृष्ठ-४६९.

३. भारतेर साधक शंकरनाथ राय, भाग-प्रथम-पृष्ठ-४६९

४. इस प्रतिष्ठान का प्रधान कार्यालय कलकत्ते में है। उसका पता बाबा काली कमली वाला पचायत क्षत्र, २०८ महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता-७

५. भारतेर साधक — पृष्ठ-४६९

६. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द, प्रथम भाग पृष्ठ २४८-२४९

७. वही-पृष्ठ २९०-२९४

८. श्री म दर्शन — स्वामी नित्यात्मानन्द, चौथा भाग, पृष्ट-१०६

९. श्रीम दर्शन-स्वामी नित्यात्मानन्द, चौथा भाग-पृष्ठ १०५

१०. श्रीम दर्शन-स्वामी नित्यात्मानन्द, छठा भाग पृ० ७३

११. श्रीमत् विवेकानन्द स्वामीजीर जीवनेर घटनावली-महेन्द्रनाथ दत्त-द्वितीय भाग, पृष्ठ १२४

१२. भारतेर साधक पृ० ४७०

१३ श्री "म" दर्शन, चौथा भाग, पृ० १०५

१४. वही पृ० १०६

१५. स्वामीजीर स्मृति संचयन स्वामी निर्लेपानन्द (२रा 'मुद्रण १३८९) पृ० ८६-८७

१६. उद्‌बोधन ४२ वाँ वर्ष आषाढ़ १३४७, पृ० २९८-२९९

१७. श्रीमा सारदा देवी —स्वामी गंभीरानन्द पृ० २१२

१८. भारतेर साधक — पृ० ४७०

त्याग एवं वैराग्य [३]

स्वामी रामदेवानन्द

जिज्ञासा : क्या त्यागी जीवन ग्रहण करने में कोई कालाकाल भेद नहीं है ?

प्रतिवचन : नहीं। त्याग अथवा संन्यास ग्रहण करने में किसी प्रकार का कालाकाल नहीं है। श्रुति कहती है "यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।"[23] अर्थात् जिस क्षण वैराग्य उत्पन्न हो जाय, उसी क्षण प्रव्रज्या करना उचित है।

जिज्ञासा : किन्तु शास्त्र में तो चार आश्रमों का विधान है, जिसके अनुसार क्रम से एक आश्रम से दूसरे आश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

प्रतिवचन : जिस शास्त्र में चार आश्रमों का विधान है उसी शास्त्र में अधिकारी व्यक्ति को किसी भी आश्रम से संन्यास आश्रम में प्रवेश करने की छूट भी दी गयी है। यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्, गृहाद्वा वनाद्वा.[24]" महाभारत के मोक्षधर्म पर्व में महात्मा शुकदेव राजर्षि जनक से प्रश्न करते हैं— महाराज, यदि ब्रह्मचर्य ग्रहण के पूर्व ही हृदय में मोक्षधर्म का मूल सनातन ज्ञान उत्पन्न हो, तो ब्रह्मचर्यादि आश्रमत्रय में वास करना कर्त्तव्य है ? इसपर महराज जनक ने कहा—

अनुच्छेदाय लोकनामनुच्छेच्दाय कर्मणाम्।
पूर्वैराचरितो धर्मश्चातुराश्रम्यसंकट :॥
अनेन क्रमयोगेन बहुजातिषु कर्मणाम्।
हित्वा शुभाशुभां कर्म मोक्षो नामेह लभ्यते॥
भावितै : कारणैश्चायं वहुसंसारयोनिषु।
आसादयति शुद्धात्मा मोक्षं वै प्रथमाश्रमे॥
तमासाद्य तु युक्तस्य दृष्टार्थस्य विपश्चित:।
त्रिष्वाश्रमेषु को न्वर्थो भवेत् परमभीप्सित:॥[25]"

अर्थात् पूर्व पण्डितगण लोक समुदाय की धर्मशिक्षा एवं कर्मकाण्ड के अनुच्छेद के निमित्त ब्रह्मचर्यादि आश्रमचतुष्टय की स्थापना कर गये हैं, ताकि मनुष्य उस नियमानुसार धर्मानुष्ठान करके अनेक जन्मों के बाद कर्म का शुभाशुभ फल परित्यागकर मोक्षलाभ कर सके। परन्तु जो व्यक्ति अनेक जन्मों के साधन द्वारा इन्द्रियसमुदाय को वशीभूत एवं बुद्धि को परिशोधित कर सकते हैं, उनका ब्रह्मचर्य आश्रम में ही मोक्षलाभ हो जाता है। ब्रह्मचर्याश्रम में मोक्षलाभ कर पाने पर गृहस्थादि आश्रम ग्रहण करने का कोई प्रयोजन नहीं है ?

जिज्ञासा : साधारणत: लोग कहते हैं कि धर्म चौथेपन की चीज है। क्या यह कथन सत्य नहीं है ?

प्रतिवचन : योगवाशिष्ठ में लिखा है—

"युवैव धर्मशील : स्यात् अनित्यं खलु जीवितम्।
को हि जानाति कस्माद्य मृत्यु कालो भविष्यति॥"

—जीवन की अनित्यता के कारण युवाकाल में ही धर्मशील बनना चाहिए। कौन जानता है कि कब किसका शरीर छूट जायगा।

श्रीमद्भागवत में भी यही बात लिखी हुई है- "कौमारं आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।"

—बुद्धिमान व्यक्ति को बचपन में ही भक्तिमार्ग का अनुशीलन करना चाहिए।

फिर श्रुति कहती है कि 'न अयमात्मा बलहीनेन लभ्य'। अतएव जबतक शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापा नहीं आया है, इन्द्रियों की शक्ति पूरी बनी हुई है, आयु के दिन शेष हैं, तभी तक बुद्धिमान पुरुष को अपने कल्याण के लिए अच्छी तरह यत्न कर लेना चाहिए। घर में आग लग जाने पर कुँआ खोदने से क्या होगा ?

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षया नायुषः।
आत्म श्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रादीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥"

जिज्ञासा : क्या त्याग अस्वाभाविक नहीं है ?

प्रतिवचन : नहीं। कदापि नहीं। एकमात्र त्याग ही सबसे स्वाभाविक प्रणाली है। हम अकेले जन्मे हैं और मरेंगे भी अकेले। तो हमें अकेले रहना भी चाहिए। यह स्वाभाविक है। विवाह करना और बच्चे उत्पन्न करना यह वास्तव में अस्वाभाविक है। परन्तु हम भूलवश इसे ही स्वाभाविक समझ बैठे हैं। देहात्मबोध ही इसका कारण है। हम वास्तव में नित्य-शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं। हम आनन्द स्वरूप हैं, पूर्ण हैं। हमें किसी बाह्य आनन्द की जरूरत नहीं, किसी बाह्य चीजों की आवश्यकता नहीं। परन्तु हम अपना स्वभाव भूल गये हैं और बाहरी दुनिया में आनन्द के लिए, परिपूर्णता के लिए भटक रहे हैं। "कस्तूरी कुंडली बसै मृग ढूंढ़ै बन माहीं" वाली स्थिति हमारी हो गयी है। यही हमारी अस्वाभाविकता है। हमें इस इन्द्रियजगत में आनन्द एवं पूर्णता के लिए भटकना छोड़कर अपने सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाना चाहिए, आत्माराम हो जाना चाहिए। यही हमारा स्वाभाविक धर्म है।

जिज्ञासा : संसार त्याग करने वाला व्यक्ति क्या पलायनवादी नहीं है ?

प्रतिवचन : संसार-त्याग करने वाला व्यक्ति पलायनवादी नहीं होता। उसके अन्दर भौतिक समृद्धि प्राप्त करने के लिए पर्याप्त क्षमता और शक्ति होती है। उसमें विजय-प्राप्ति की भावना होती है न कि भय, पराजय और पलायन की, जो कि कायरता का चिह्न है। कायर व्यक्ति त्याग का जीवन अपनाने का अधिकारी नहीं हो सकता। जब हममें अन्तश्चेतना होती है, तब हम अपनी शक्ति का आध्यात्मिक कार्यों में विनियोग करना चाहते हैं। हम उसे संसार से अलग कर लेते हैं और तब यही त्याग कहलाता है। संसारी व्यक्तियों की यह धारणा होती है कि वे तथाकथित सांसारिक कर्तव्य-कर्मों का निर्वाह साधुओं की अपेक्षा अधिक निपुणता से कर सकते हैं। पर यह एक भ्रम है। सच्चे साधुओं में वह शक्ति होती है कि यदि वे उसका उपयोग तथाकथित सांसारिक कर्तव्य-कर्मों में करें, तो चतुर से चतुर संसारी व्यक्ति भी उनकी बराबरी नहीं कर सकेगा। क्यों ? इसलिए कि वे संसार से मुख मोड़कर नहीं भागे, वरन् उन्होंने उसकी ऊँचाइयों को लाँघा और उसके स्वर्णिम आकाश में ऊँची उड़ानें भरीं। त्यागी आत्मविश्वास की मूर्ति होते हैं।

जिज्ञासा : अच्छा यह माना कि त्याग अनिवार्य है एवं स्वाभाविक भी है, परन्तु गृहत्याग करने वाला व्यक्ति क्या स्वार्थी नहीं है जो अपनी स्वयं की मुक्ति के लिए माता-पिता एवं समस्त परिवार को रोते छोड़कर चला जाता है ?

प्रतिवचन : मुक्ति के लिए त्याग करने वाला स्वार्थी नहीं, परमार्थी होता है। अपने 'अहं' की तुष्टि एवं पुष्टि के लिए जो कुछ किया जाता है, उसे स्वार्थ कहते हैं और मुक्ति कामी व्यक्ति का उद्देश्य ही होता है 'अहं' का नाश करना। तब अपनी व्यक्तिगत आशा-आकांक्षाओं, सुख-सुविधाओं, स्त्री पुत्रों, भोग-विलासों तथा मान-यशों का वह त्यागकर देता है। वह अपने लिए कुछ नहीं करता। 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' ही उसका जीवन धारण होता है। फिर वह स्वार्थी कैसा ? वह तो अपने को विश्व के साथ एकाकार कर देता है। वह अपने बाहुपाशमें समस्त जगत् को बाँधकर गाने लगता है —

"धरती मेरी माता पिता आसमान,
मुझ तो लगता अपना सा सारा जहाँ।"

उसके लिए 'बसुधैव कुटुम्बकम्' हो जाता है। अतएव त्यागी व्यक्ति स्वार्थी नहीं पर मार्थीहै।

श्री रामकृष्ण देव ने कहा है — भक्तिकामना कामना नहीं है जैसे हिञ्चे साग (एक प्रकार का करुआ साग), साग नहीं; मिश्री की मिठाई, मिठाई नहीं; नीबू की खटाई, खटाई नहीं। इसी प्रकार मुक्ति कामना भी स्वार्थ नहीं।

जिज्ञासा : श्रवण कुमार की तरह माता-पिता की सेवा करना क्या परम धर्म नहीं ?

प्रतिवचन : अवश्य, माता-पिता ईश्वर तुल्य हैं। जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम में रहकर अपने माता-पिता की सेवा नहीं करता वह नीचातिनीच है। गृहस्थों के लिए, तो —

"पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः ॥
पितरि प्रीतिमापन्नै प्रीयन्ते सर्व देवताः ॥"

और माता तो इससे भी बढ़कर है। उनका स्थान ता सर्वोपरि है।

परन्तु एक महान उद्देश्य के लिए माता-पिता की सेवा का भी त्याग करने की अनुमति शास्त्रों ने दी है। एक माता-पिता की सेवा से वंचित होकर हजारों-लाखों असहाय माता-पिताओं की सेवा में अपने आपको समर्पित करना निश्चय ही एक महान उद्देश्य है। भगवान बुद्ध तथा स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषों ने उसी भावना से अपनी माता-पिताओं का त्याग किया था।

फिर ईश्वर के लिए भी माता-पिता को छोड़ा जा सकता है। जीवन का परम उद्देश्य है भगवान की प्राप्ति करना। जो व्यक्ति इस महान् उद्देश्य की प्राप्ति कर लेता है उसे जन्म देकर माता-पिता भी अपने आपको धन्य मानते हैं। ऐसी सन्तान को जन्म देना सार्थक होता है।

"पुत्रवती जुबती जग सोई।
राम भगत् जासु सुत होई ॥"

ऐसे पुत्र के जन्म से कुल पवित्र हो जाता है। धरती पुण्यवती हो जाती है—

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायण जेहि नर उपज विनीत ॥ [१४]"

"कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपरसंवित्सुख सागरेऽस्मिँ
ल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥ [१५]"

— जिसका चित्त अपना ज्ञान और सुख के सागर परब्रह्म में लीन हो जाता है उसके जन्म से कुल पवित्र, जननी कृतार्थ और पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है।

अपने कुल में ऐसे वंशज को जन्मे देखकर पितागण भी प्रसन्न होकर उस आशा से ताल ठोककर नाचने लगते हैं कि यह हमारा उद्धार करेगा।

आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः।
मद्वंशे वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति ॥ [१६]"

जिज्ञासा : सो तो ठीक है परन्तु यदि ऐसे माता-पिता हों जो पुत्र को त्याग करने का आदेश न दें तो क्या करना चाहिए ?

प्रतिवचन : यदि पुत्र के भीतर ठीक-ठीक धर्मानुराग हो तो माता-पिता भी आज नहीं कल त्याग की अमुमति दे ही देते हैं। ऐसे भी माता-पिता हैं जो धपने एकलौते पुत्र को भी सानन्द संसार त्याग करने का आदेश एवं आशीर्वाद देते हैं, भले ही अपने दुलाल को त्याग के कठिन पथ पर जाते देखकर उनका दिल रोता हो। इसी में माता-पिता की महिमा है। माता-पिता का धर्म होता है पुत्र का कल्याण साधन करना। वे स्वार्थवश पुत्र का लालन-पालन नहीं करते, एकमात्र वात्सल्य प्रेम ही उनके बीच का बन्धन होता है। फिर पुत्र यदि गृहस्थाश्रम में रहे तो उसका धर्म होता है माता-पिता की सेवा करना। बुद्धिमान माता-पिता अपने पुत्र को धर्मपथ से कभी च्युत नहीं करते। वैदिक युग में भी मदालसा नामक एक माता ने अपने पांच-पाँच पुत्रों को जन्म देकर, पाल पोसकर तपस्या करने वन में भेज दिया था

क्योंकि वह जानती थी कि इसी में पुत्र जन्म देने की सार्थकता है।

फिर भी यदि कोई ऐसे माता पिता हों जो स्वार्थवश अपने पुत्र को धर्ममार्ग पर बढ़ने से रोकें तो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने में कोई दोष नहीं है। परन्तु मन में सदा उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखनी चाहिए। आखिर वे माता-पिता ही हैं। जो संसार त्याग कर चले जाते हैं माता-पिता के प्रति उनकी भक्ति साधारण लोगों से हजार गुणा अधिक होती है। केवल वे बाह्य रूप से उसे व्यक्त नहीं कर पाते हैं। ईश्वर के लिए माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन किया जा सकता है, यह संत और शास्त्र सम्मत है। गोस्वामीजी महाराज ने उदाहरण देते हुए कहा है —

"जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बंधु भरत महतारी।
बलि गुर तज्यो, कंत ब्रजवनितनि, भए जग मंगलकारी॥ [31]"

इसी बात को भगवान श्री रामकृष्ण ने कहा है - "ईश्वर के लिए गुरुजनों की बात का उल्लंघन किया जाय तो इसमें कोई दोष नहीं होता। भरत ने राम के लिए कैकेयी की बात नहीं मानी। गोपियों ने श्रीकृष्ण दर्शन के लिए पति की मनाहीं नहीं सुनी। प्रह्लादने ईश्वर के लिए बापकी बात पर ध्यान नहीं दिया। बलि ने ईश्वर की प्रीति के लिए अपने गुरु शुक्राचार्य की बात नहीं सुनी। विभीषण ने राम को पाने के लिए अपने बड़े भाई रावण की बातों पर ध्यान नहीं दिया [32]"

जिज्ञासा : जो गृहत्याग कर चले जाते हैं, वे मातृऋणपितृ ऋण से कैसे मुक्त होंगे ?

प्रतिवचन : श्री मद्भागवत में लिखा है -

"देवर्षि भूताप्तनृणां पितृणां
न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः स शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कंतम्॥ [33]"

राजन् ! जो मनुष्य अपने सांसारिक कर्मों का त्याग कर भगवान मुकुन्द की शरण में आ गया है, वह देवताओं ऋषियों, पितरों, प्राणियों, कुटुम्बियों और अतिथियों के ऋण से उऋण हो जाता है। वह किसी के अधीन, किसी का सेवक, किसी के बन्धन में नहीं रहता।

जिज्ञासा : यदि एकमात्र पुत्र गृहत्याग कर चला जाये तो माता पिता की सेवा कौन करेगा ? फिर एकमात्र पुत्र के गृहत्याग से श्राद्धादि क्रिया लुप्त हो जायगी और पितरगण पतित हो जायेंगे।

प्रतिवचन : यदि माता-पिता के खाने-पीने तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं की सुव्यवस्था हो तो पुत्र उनकी अनुमति लेकर गृहत्याग कर सकता है संसार में कितने दम्पति हैं जो निःसन्तान होकर जीवन यापन कर लेते हैं। यहाँ तो अपने एकमात्र पुत्र को एक महान् उद्देश्य के लिए भेजा जाता है। अतएव अपनी सुविधा असुविधाओं की ओर ऐसे माता-पिता का ध्यान न जाकर अपने लाड़ले के महान जीवन को सोच-सोच कर धन्य होते रहते हैं। चैतन्य महाप्रभु, आदिगुरु शंकराचार्य आदि ने इसी प्रकार गृह त्याग किया था। परन्तु यदि पुत्र के अभाव में माता पिता का जीवन यापन संभव न हो, तो पुत्र को तबतक उनकी सेवा करनी चाहिए जबतक वे लोग इस संसार में हैं, उसके बाद वह गृहत्याग कर सकता है। लेकिन इसके लिए विवाहादि कर घर-गृहस्थी में फँसने की कोई आवश्यकता नहीं है।

यह ठीक है कि पुत्र के द्वारा श्राद्ध तथा तर्पणादि क्रिया करने से पितरों का उद्धार होता है। परन्तु जो साधु बन जाता है, भगवान के प्रेम में लीन हो जाता है, वह अपने पुण्य के प्रभाव से मात्र एक पीढ़ी नहीं, अपने वंश की कई पीढ़ियों

का उद्धार कर देता है। फिर उसके लिए श्राद्धादि कर्म करने की क्या आवश्यकता है ?

"षष्टिं कुलान्यतीतानि षष्टिमागामी कानि च।
कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत् ॥"

जिज्ञासा : अच्छा, माया, ममता आदि का त्याग कर गृह में रहकर क्या धर्म का पालन नहीं हो सकता है ?

प्रतिवचन : इस संबंध में बाह्य त्याग की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए बहुत सारी बातें कही जा चुकी हैं। फिर उसी प्रश्न को दुहराने से क्या लाभ ? बात ऐसी है कि हमें अपने स्वजनों, परिवार, समाज के प्रति इतनी अधिक आसक्ति है, ममत्व है कि उनके बीच रहते हुए इस आसक्ति का त्याग बहुत कठिन है। जब किसी को कोई रोग हो जाता है तो उसे ऐसी चीजों से परहेज करना पड़ता है जिससे रोग-वृद्धि होती हो। जिसे सन्निपात का रोग हो गया हो, उसके पास यदि इमली और अँचार रख दिया जाय तो वह अपने लोभ को सँभाल न पाकर उसे खा ही डालेगा। परन्तु उससे उसका रोग और बढ़ जायेगा। इसी प्रकार माया-मोह रूपी जो रोग हमें हुआ है वह स्वजनों, परिवार के बीच रहकर कभी छूट नहीं सकता। इसके लिए तो उचित दवा और परहेज की आवश्यकता है। जब रोग ठीक हो जाय तब चाहे जहाँ रहो, कोई डर नहीं : श्रीरामकृष्णदेव ने कहा है "देखो, दया और माया। ये दो पृथक-पृथक चीजें हैं। माया का अर्थ है, आत्मीयों के प्रति ममता, जैसे बाप, माँ, भाई, बहन, स्त्री, पुत्र इन पर प्रेम। दया का अर्थ है सब भूतों में प्रेम, समदृष्टि।"[३५]

जिज्ञासा : त्यागियों से समाज एवं राष्ट्र को क्या लाभ है ? क्या वे समाज के लिए भार-स्वरूप नहीं हैं ?

प्रतिवचन : त्यागी पुरुष ही समाज का ठीक-ठीक हितैषी है। उसे अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। वह जो कुछ करता है, दूसरों के कल्याण के लिए ही करता है। निःस्वार्थी व्यक्ति ही देश की ठीक-ठीक सेवा कर सकता है। 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' भिक्षवे चरन्ति'—अर्थात् बहुत लोगों के सुख के लिए, हित के लिए ही साधु-संन्यासी विचरण करते हैं। आज रामकृष्ण मिशन जैसी संस्थाओं के द्वारा त्यागी-संन्यासी लोग देश का अशेष कल्याण साधन नहीं कर रहे हैं ? शिष्य श्री शरतचन्द्र चक्रवर्ती के एक प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा था—"वे (साधु-संन्यासी) ही भारत के मेरुदण्ड हैं। सच्चे संन्यासी ही गृहस्थों के उपदेशक हैं। उन्हीं के उपदेश और ज्ञानालोक प्राप्त कर प्राचीन काल में गृहस्थ लोग जीवन संग्राम में सफल हुए थे। संन्यासियों को अनमोल उपदेश के बदले गृहस्थ अन्न-वस्त्र देते रहे हैं। यदि ऐसा आदान प्रदान न होता तो इतने दिनों में भारतवासियों का भी अमेरिका के आदिवासियों के समान लोप हो जाता। संन्यासियों को मुट्ठी भर अन्न देने के कारण ही गृहस्थ लोग अभी तक उन्नति के मार्ग पर चले जा रहे हैं। संन्यासी लोग कर्महीन नहीं हैं, वरन् वे ही कर्म के स्रोत हैं। उनके जीवन या कार्य में ऊँचे आदर्शों को परिणत होते देख और उनसे उच्च भावों को ग्रहण कर गृहस्थ लोग इस संसार के जीवन-संग्राम में समर्थ हुए तथा हो रहे हैं। पवित्र संन्यासियों को देखकर गृहस्थ भी उन पवित्र भावों को अपने जीवन में परिणत करते हैं और ठीक-ठीक कर्म करने को तत्पर होते हैं। संन्यासी अपने जीवन में ईश्वर तथा जगत् के कल्याण के निमित्त सर्वत्याग रूप तत्त्व को प्रतिफलित करके गृहस्थों को सब विषयों में उत्साहित करते हैं और इसके बदले वे उनसे मुट्ठी भर अन्न लेते हैं। फिर उसी अन्न को उपजाने की प्रवृत्ति और शक्ति भी देश के लोगों में सर्व त्यागी संन्यासियों के स्नेहाशीर्वाद से ही बढ़ रही है। बिना विचारे ही लोग संन्यास-प्रथा की निन्दा करते हैं। अन्य देशों में चाहे जो कुछ क्यों न हो,

पर यहाँ तो संन्यासियों के पतवार पकड़े रहने के कारण ही संसार-सागर में गृहस्थों की नौका नहीं डूबने पाती।

शिष्य - महाराज, लोक कल्याण में तत्पर यथार्थ संन्यासी मिलता कहाँ है ?

स्वामीजी - यदि हजार वर्ष में भी श्रीगुरुदेव (श्रीरामकृष्णदेव) के समान कोई संन्यासी महापुरुष जन्म ले लेते हैं तो सब कमी पूरी हो जाती है। वे जिन उच्च आदर्शों और भावों को छोड़ जाते हैं, उनके जन्म से सहस्र वर्षों तक लोग उनको ही ग्रहण करते रहेंगे। देश में इस संन्यास-प्रथा के होने के कारण ही यहाँ उनके समान महापुरुष जन्म ग्रहण करते हैं। दोष सभी आश्रमों में है, पर किसी में कम और किसी में अधिक। दोष रहने पर भी इस आश्रम को अन्य आश्रमों का शीर्षस्थान प्राप्त हुआ है, उसका कारण क्या है ? सच्चे संन्यासी तो अपनी मुक्ति की भी उपेक्षा करते हैं—जगत् के मंगल के लिए ही उनका जन्म होता है। यदि ऐसे संन्यासाश्रम के भी तुम कृतज्ञ न हो तो तुम्हें धिक्कार कोटि कोटि धिक्कार है। जगत् में संन्यासी क्यों जन्म लेते हैं ? औरों के निमित्त अपना जीवन उत्सर्ग करने, जीव के आकाशभेदी क्रंदन को दूर करने, विधवा के आँसुओं को पोंछने, पुत्र-वियोग से पीड़ित अबलाओं के मन को शांति देने, सर्वसाधारण को जीवन संग्राम में सक्षम करने, शास्त्र के उपदेशों को फैलाकर सबको ऐहिक और पारमार्थिक मंगल करने और ज्ञानालोक से सबके भीतर जो ब्रह्मसिंह सुप्त है, उससे जाग्रत करने।"[36]

(त्याग कौन कर सकता है तथा त्याग कब करना चाहिए आदि प्रश्नों के समाधान हेतु पढ़े अद्वैत आश्रम, ५ डिही इन्टाली रोड, कलकत्ता-१३ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'साधना और सिद्धि।)

---

२४. जाबालोपनिषद्, मंत्र-४
२४. महाभारत (मोक्षधर्म पर्व) १६२/२८-२७
२६. श्री मद्भागवत ७/६/1
२७. वैराग्य शतकम्
२८. श्री रामचरितमानस, उत्तर काण्ड, १२७
२९. स्क० पु० माहे० खं० कौ०, खं ५५/१४०
३०. पद्म पुराण
३१. विनय पत्रिका
३२. श्री रामकृष्ण वचनामृत, तृतीय भाग पृ०-६९-७० (१९४७ संस्करण)
३३. श्री मद्भागवत, ११/५/४१
३४. संन्यासोपनिषद्, मंत्र,
३५. श्रीरामकृष्ण वचनामृत प्रथम भाग, पृ०—१६८-१६९ (तृतीय संस्करण)
३६. वि० सा०, ष० खं०, पृ०-६५-६७

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक— स्वामी विदेहात्मानन्द

१८९२ ई० में ही जब स्वामी अभेदानन्द 'थ्रेड वर्म' (सूत्र कृमि) की बीमारी से कष्ट पा रहे थे, उस समय लाटू महाराज ने उनकी सेवा-शुश्रूषा की थी। स्वामी अभेदानन्द ने लिखा है "लाटू महाराज का अपने गुरुभाइयों के प्रति प्रेम भी अत्यद्भुत था। आलमबाजार मठ में जब मुझे बीमारी हुई तब लाटू महाराज ने मेरी बड़ी सेवा की थी। उस समय चिकित्सकों ने बताया था कि इस रोग के बीज अन्य किसी के देह का स्पर्श करने पर उसे भी यह बीमारी होने की सम्भावना है, तो भी वे प्रतिदिन शरत् महाराज के साथ मेरा घाव धो दिया करते थे।"

इन दिनों लाटू महाराज प्रतिदिन सुबह आलम बाजार मठ में जाते और सन्ध्या के बाद मठ से बाहर आकर किसी अन्य स्थान में तपस्या करने को बैठते। ये बातें हमने तुलसी महाराज के मुख से सुनी हैं।

१८९३ ई० के प्रारम्भ में वे मठ में आया करते थे। स्वामी शुद्धानन्द ने बताया "उन दिनों मठ में अभेदानन्द स्वामी द्वारा रचित श्रीरामकृष्ण-स्त्रोत का प्रतिदिन सन्ध्या के समय पाठ होता था :

निरंजनं नित्यमनन्तरूपं
भक्तानुकम्पाधृतविग्रहं वै।
ईशावतारं परमेशमीड्यं
तं रामकृष्णं शिरसा नमामि॥

—इस श्लोक में 'ईशावतारम्' शब्द सुनकर वे मन ही मन नाराज हुए और शरत् महाराज से बोले, 'ऐ शरद्! लगता है इसी बीच तुम लोग उन्हें (ठाकुर को) भूल गये? ईसा की पूजा करने लगे हो! तुम लोग सब क्या हो रहे हो!' इत्यादि।"

स्वामी अभेदानन्दजी ने इस घटना के विषय में लिखा है "इस श्लोक को सुनकर लाटू महाराज बड़े दुःखी हुए थे। मुझे सामने देखकर वे बोले, आखिरकार तूने ठाकुर को ईसामसीह का अवतार बना डाला!' जब मैंने उनको श्लोक का यथार्थ तात्पर्य समझा दिया तब वे मेरी प्रशंसा करने लगे और बाद में उन्होंने लोगों में इसका विशेष रूप से प्रचार करने का प्रयास भी किया था।"

उसी वर्ष की एक और घटना भी हमारी जानकारी में आयी है। एक दिन एक भक्त किसी उत्सव के उपलक्ष्य में लाटू महाराज को निमन्त्रण देने के लिए श्रीयुत निवारणचन्द्र दत्त के साथ बागबाजार में स्थित केदारचन्द्र दास के घर गये। वहाँ जाकर उन लोगों ने देखा कि लाटू महाराज एक चादर ओढ़कर बैठे हुए हैं। निवारण बाबू लाटू महाराज को पुचकारते रहे, परन्तु कोई उत्तर न मिलने पर वे एक घंटा प्रतीक्षा में बैठे रहे। ध्यान भंग होने पर उन्होंने महाराज को निमन्त्रण की बात कही। सुनकर लाटू महाराज बोले "यहाँ क्यों आये? आलमबाजार में जाओ। वहाँ के साधुओं को निमन्त्रण कर आओ। शशीभाई के

जाने से ही ठाकुर का जाना होगा, ऐसा समझना।" (ठाकुर के भक्त श्री निवारणचन्द्र दत्त से सुनी हुई।)

उसी वर्ष के आषाढ़ महीने में माताजी पुनः बेलुड़ के नीलाम्बर मुकर्जी के किराये के मकान में आयीं। लाटू महाराज भी वहाँ गये। परवर्ती काल में उन्होंने हम लोगों को बताया—"देखो, नीलाम्बर के मकान में माँ ने कठोर पंचतपा किया था। लोकशिक्षा के लिए उन्होंने भी इतनी कठोरता की। तपस्या के बिना किसी के लिए कुछ कर पाना सम्भव नहीं, समझे।"

इन्हीं दिनों लाटू महाराज को माताजी से स्वामी विवेकानन्द के विदेश गमन की बात ज्ञात हुई। परवर्ती काल में उन्होंने कहा था "माँ के मुख से सुनकर मुझे मालूम हुआ कि लोरेनभाई उस देश (अमेरिका) गया है। लोरेनभाई की खबर सुनने के लिए मेरा मन बड़ा आकुल था। ठाकुर के देहत्याग के बाद सभी कहने लगे, 'ठाकुर (नरेन्द्र के उज्ज्वल भविष्य के बारे में कहकर, क्या ही पागलपन कर गये!' परन्तु मुझे वह बात नहीं पटती थी। मैं सभी से कह देता, वे जब कह गये हैं तो एक न एक दिन अवश्य ही हम सबसे ऊपर उठ जाएगा, तब देखना।' वे कहा करते थे, उसके द्वारा बड़ बड़े कार्य होंगे; और तुम लोग हो कि उनकी बात पर संशय कर रहे हो! उनकी बातें क्या कभी मिथ्या हो सकती हैं? आखिरकार स्वामीजी का कर्म जब उस देश में प्रकट हुआ तो मुझे इतना आनन्द हुआ कि क्या कहूँ।" उसी काल की एक बात हमें गिरीश बाबू के मुख से सुनने को मिली है—'लाटू बीच बीच में यहाँ आकर ठीक शिशुसुलभ उत्कण्ठा के साथ स्वामीजी की जययात्रा की बातें सुना करता था। मैंने जब उसे बताया कि (वहाँ) स्वामीजी का व्याख्यान सबसे अच्छा हुआ है, तब लाटू ने ठीक बालक की भाँति हँस कर कहा था, 'होगा क्यों नहीं! ठाकुर कहते थे कि लोरेन में अट्ठारह शक्तियाँ हैं। वे शक्तियाँ जाएँगी कहाँ? ऐसा तो होगा ही! उनकी बात क्या मिथ्या हो सकती है?' एक दिन वह भाव में इतना विभोर हो गया कि मुझसे बोला, "उसे लिख दीजिए—भय की कोई बात नहीं, ठाकुर तुम्हारी रक्षा कर रहे हैं'।" इन्हीं दिनों एक अन्य व्यक्ति से कहा था, "देखा न, ठाकुर जिसे बड़ा कह गये हैं, उसे क्या कभी ढँककर रखा जा सकता है?" यह बात हमने एक गुरुभाई के मुख से सुनी है।

उसी वर्ष लाटू महाराज ने कुछ दिन हरमोहन बाबू के घर पर निवास किया था। वहाँ पर वे दोपहर में नहीं ठहरते थे, अक्सर थोड़े चने या चिवड़े लेकर घर के बाहर चले जाते थे। यह बात हमने हरमोहन बाबू से सुनी है।

हमने जितना कुछ सुना है उसके आधार पर कह सकते हैं कि १८९१ ई० के अन्तिम काल से लेकर १८९४ ई० तक लाटू महाराज रात को प्रायः ही केदारचन्द्र घोष के घर भोजन करते थे। दिन के समय वे बिना माँगे भिक्षा में प्राप्त पैसों से भुने हुए चने खाकर दिन निकाल देते थे। किसी किसी दिन दोपहर को वे रामबाबू के घर खा लेते थे। उसी समय वे माँ (राम बाबू की सहधर्मिणी) से गेरुआ वस्त्र ले आते थे। कम्बल आदि की जरूरत पड़ने पर कभी कभी वे उसे गिरीश बाबू से माँग लेते। सुना है कि उन्होंने केवल एक बार ही राम बाबू से एक कम्बल माँगा था। बीच बीच में जब कभी वे भक्त नवगोपाल घोष के घर पहुँच जाते तो वे इन्हें विविध प्रकार के सुस्वादु व्यंजन आदि खिलाया करते। सुना है कि एक बार मनमोहन बाबू ने उन्हें अपने घर ले जाकर तृप्ति पूर्वक भोजन कराया था।

इन्हीं दिनों सालकिया के एक मोदी उन्हें कच्चे-सीधे की जगह पक्का-सीधा दे आया करते थे। कुछ लोगों का अनुमान था कि वे मोदी ही उनके

चाचा हैं, परन्तु शोध करने पर हमें पता चला कि वे लाटू महाराज के चाचा नहीं थे। यहाँ तक कि वे मोदी छपरा जिले के निवासी भी नहीं थे। पश्चिमी अंचल में एक सम्प्रदाय के मोदी होते हैं जो यथारीति विरजा होम करने के बाद साधु-संन्यासियों की, विशेषकर शंकर सम्प्रदाय के साधुओं की सेवा में जीवन न्योछावर कर देते हैं। मोदी की दुकान करने से उन्हें जो लाभ होता है, उस पैसे से वे वे संन्यासियों को कच्चा सीधा देते रहते हैं। अब भी अनेक स्थानों पर ऐसे मोदी दीख पड़ते हैं। परवर्ती काल में हमने लाटू महाराज के मुख से सुना है —"एक मोदी मुझे बागबाजार के पुल के नीचे बीच बीच में गरम रोटियाँ और तरकारी दे जाया करता था। सात-आठ महीने उसने इसी प्रकार दिया था। उसके बाद उसने आना बन्द कर दिया।"

श्री उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने हमें बताया था—'योगानन्द स्वामी के तीर्थभ्रमण को निकल जाने पर मैं लाटू महाराज का संग करता रहा। (१८९४ ई० के जनवरी में योगानन्द माताजी के साथ तीर्थयात्रा को गये थे। लगता है उपेन बाबू का तात्पर्य इसी काल से है।) उन दिनों लाटू महाराज को किसी गृहस्थ के घर भोजन करना पसन्द नहीं था। एक दिन मैंने अपने घर चलने के लिए उनसे बड़ा अनुरोध किया परन्तु उस समय वे मेरे अनुरोध को स्वीकार नहीं कर सके थे। उन्होंने मुझसे कहा, 'अरे, तुम्हारे ही पैसे से तो मैं पूरी खरीदकर खा रहा हूँ, बात तो एक ही हुई न ! फिर घर जाकर खाने की क्या जरूरत है ?"

१८९४ ई० के प्रथम भाग में लाटू महाराज एक दिन राखाल महाराज से मिलने को आलम-बाजार मठ आये थे। उस दिन राखाल महाराज मठ में नहीं थे। उस दिन की बातें हमने शशी महाराज के मुख से इस प्रकार सुनी हैं "राजा को न पाकर लाटू चला जा रहा है यह देखकर मैंने कहा, 'आज यहीं रह जा न भाई ! तू तो भागा भागा फिरता है, यहीं पर आकर भी तो रह सकता है।' मेरी बात के उत्तर से वह हँसते हुए बोला, 'फिर एक दिन आऊंगा।' तब मैंने उसे कहा, 'दक्षिणेश्वर के उत्सव में जाना, समझे !' सिर हिलाकर वह चला गया।"

इस वर्ष दक्षिणेश्वर में ठाकुर के जन्मोत्सव के समय लाटू महाराज उपस्थित थे। वहाँ पर लाटू महाराज ने कीर्तन में श्रीयुत विजयकृष्ण गोस्वामी के साथ काफी देर तक नृत्य किया था। उस वर्ष भक्तपालक रामबाबू भी वहाँ गये थे, यह बात भी हमें उनसे सुनने को मिली। (क्रमशः)

☐

"हाँ ! मैं तरसता हूँ— अपने चिथड़ों के लिए, अपने मुण्डित मस्तक के लिए, वृक्ष के नीचे सोने के लिए, और भिक्षा के भोजन के लिए मैं तरसता हूँ। भारत में अपने दोष होते हुए भी वही एकमात्र स्थान है जहाँ आत्मा अपनी मुक्ति, अपने ईश्वर को पाती है। यह पश्चिमी चमक-दमक केवल मिथ्या है और आत्मा का बन्धन है। संसार की निःसारता का मैंने अपने जीवन में पहले कभी ऐसी दृढ़ता से अनुभव नहीं किया था। प्रभु सबको बन्धन से मुक्त करें—माया से सब लोग निकल सकें—यही मेरी नित्य प्रार्थना है।

—श्रीमती बुल को न्यूयार्क से लिखित स्वामी विवेकानन्द पत्र का अंश।

विवेक चूड़ामणि

भाष्यकार—स्वामी वेदान्तानन्द

अनुवादक—डॉ० आशीष बनर्जी

अज्ञानमूलोऽयमनात्मबन्धो
नैसर्गिकोऽनादिरनन्त ईरितः ।
जन्माप्ययव्याधिजरादि दुःख-
प्रवाहपातं जनयत्यमुष्य ॥१४६॥

यह अज्ञानजनित अनात्मबन्धन स्वाभाविक, आदि रहित और अन्तरहित कहा गया है। यह अनात्म बन्धन ही जीव के जन्म-मृत्यु-व्याधि-जरा-रूप दुःख प्रवाह को उत्पन्न कर उसके पतन का कारण होता है।

गीता में संसार की आदि अन्तहीन, अव्यय पीपल के वृक्ष के साथ तुलना की गयी है।

गी० १५/१-४

यहाँ अनात्म बंधन को आपेक्षिक भाव से 'अनन्त' कहा गया है। जब तक अज्ञान है, तब तक बन्धन है; आत्मज्ञान के उदय होने पर इनका नाश होता है। अज्ञान की उत्पत्ति कब किस प्रकार से हुई, कोई नहीं जानता। इसी कारण इसे अनादि कहा गया।

एक मात्र ज्ञान के द्वारा अज्ञान का विनाश सम्भव है :—

नास्त्रैर्न शास्त्रैरनिलेन वह्निना
छेत्तुं न शक्यो न च कर्मकोटिभिः ।
विवेक विज्ञान महासिना विना
धातुः प्रसादेन सितेन मञ्जुना ॥१४७॥

अस्त्र-शस्त्र-वायु अग्नि आदि उपायों द्वारा इस बन्धन को नहीं काटा जा सकता। श्रुतिस्मृति-विहित असंख्य कर्मों के अनुष्ठान द्वारा भी इसको नहीं काटा जा सकता। चित्त की प्रसन्नता, आत्माभिमुखिता एवं तीक्ष्ण और मनोहर विचार से उत्पन्न ज्ञान रूप असि के अतिरिक्त और कोई भी उपाय द्वारा इस बन्धन को काटना सम्भव नहीं ॥१४७॥

मन आदि इन्द्रियाँ अज्ञान-अवस्था में जीव की 'धातु' या विधाता हैं। वे जैसा चलाती हैं जीव वैसा ही चलता है। उन सबके प्रसन्न अर्थात् शुद्ध होने पर आत्मानुभूति सम्भव है।

'तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः'

क १।२।२०

"धातुसमूह अर्थात् मन आदि इन्द्रिय विशुद्ध होने पर निष्काम व्यक्ति आत्मा की उस महिमा का दर्शन करता है ('मैं ही वह आत्मा हूँ' ऐसा अनुभव करता है) एवं इस दर्शन के फलस्वरूप फिर शोकग्रस्त नहीं होता।"

मुक्ति का उपाय क्या है? इस प्रश्न का उत्तर अब दिया जा रहा है।

श्रुतिप्रमाणैकमतेः स्वधर्मनिष्ठा
तयैवात्म विशुद्धरस्य ।
विशुद्धबुद्धेः परमात्मवेदनं
तेनैव संसारसमूल नाशः ॥१४८॥

वेद के प्रमाणों में जिनका दृढ़ विश्वास है, उन्हें स्वधर्म में निष्ठा और निष्काम कर्म में प्रवृत्ति होती है। स्वधर्मनिष्ठ व्यक्ति का चित्तशुद्ध हो जाता है। बुद्धि के शुद्ध होने पर आत्म ज्ञान हो जाता है। आत्म ज्ञान-लाभ होने पर मूल अज्ञान सहित संसार से सदैव के लिए निवृत्ति हो जाती है ॥१४८॥

जो व्यक्ति जिस कार्य को सुचारु रूप से करने में समर्थ होता है, उसी कार्य का अनुष्ठान उस व्यक्ति के लिए स्वधर्म आचरण है। निष्काम भाव से स्वधर्म का अनुष्ठान करने पर चित्त शुद्ध होता है।

आत्म-अनात्म विचार के उपाय का वर्णन :—

कोशैरन्नमयाद्यैः पञ्चभिरात्मा न संवृतो भाति।
निजशक्तिसमुत्पन्नैः शैवालपटलैरिवाम्बु वापीस्थम् ॥१४९॥

जल से उत्पन्न शैवाल आदि से ढका होने के कारण पुष्करिणी में स्थित जल जिस प्रकार दृष्टि गोचर नहीं होता, उसी प्रकार आत्मा की अविद्या शक्ति से उत्पन्न अन्नमयादि पञ्चकोश द्वारा आवृत होकर आत्मा प्रकाशित नहीं होती ॥१४९॥

तच्छैवालापनये सम्यक् सलिलं प्रतीयते शुद्धम्।
तृष्णा सन्तापहरं सद्यः सौख्यप्रदं परं पुंसः ॥१५०॥

जल के ऊपर तैरनेवाले शैवाल को हटा देने पर तृष्णा नाशक, पीने मात्र से आनन्द को देने वाला, स्वाभाविक शुद्ध निर्मल जल स्पष्ट रूप से पुरुष के निकट प्रकाशित होता है ॥१५०॥

इसी प्रकार से आत्मा के ऊपर के आवरणों को हटाने पर आत्मा स्वमहिमा में प्रकाशित होता है।

पञ्चानामपि कोशानामपवादे विभात्ययं शुद्धः।
नित्यानन्दैकरसः प्रत्यग्रूपः परः स्वयंज्योतिः ॥१५१॥

जब विवेक-विचार द्वारा पांचो कोषों में कोई भी आत्मा नहीं है, ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाता है, तब शुद्ध, सदानन्दमय, सबके अन्तर में साक्षी रूप में स्थित, कोष्ठ, प्रकाशस्वभाव आत्मा स्वतः ही प्रकाशित हो जाता है ॥१५१॥

तैतरीय उपनिषद् के द्वितीय वल्ली में पंञ्च कोश का वर्णन है।

आत्मानात्मविवेकः कर्त्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा।
तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञाय सच्चिदानन्दम् ॥१५२॥

विचारशील व्यक्ति संसार बन्धन से मुक्ति लाभ हेतु आत्मा क्या है, अनात्मा क्या, है, -यह विचार करें। इस विचार द्वारा स्वयं को (अनात्म सभी दृश्य पदार्थ से पृथक सच्चिदानन्दमय ब्रह्म रूप जान कर परमानन्द लाभ करते हैं ॥१५२॥

स्वामी वागीश्वरानन्द

बड़े दुःख के साथ विवेक शिखा के पाठकों को सूचित करना पड़ता है कि रामकृष्ण मठ, नागपुर में कार्यरत श्रीमत् स्वामी वागीश्वरानन्दजी महाराज का ट्रेन से टकराकर गत ४ नवम्बर को आकस्मिक रूप से असमय में ही देहावसान हो गया।

स्वामी वागीश्वरानन्दजी रामकृष्ण मठ, नागपुर के प्रकाशन विभाग के व्यवस्थापक थे। उनके कार्यकाल में हिन्दी भाषा में रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा की उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। वे हिन्दी, बंगला, संस्कृत, मराठी आदि कई भाषाओं के निष्णात पंडित थे। स्वामी वागीश्वरानन्दजी की कविताएं हम विवेक शिखा में सारदा तनय के नाम से छापा करते थे। विवेक शिखा के प्रति उनका अशेष अनुराग था। इसके वर्तमान मुखपृष्ठ (कवर) के प्रकाशन की उन्होंने ही व्यवस्था की थी। हम भावान श्रीरामकृष्ण, माँ सारदादेवी एवं स्वामीजी से उनकी आत्मा की अखण्ड शान्ति की प्रार्थना करते हैं। हरि ऊँ रामकृष्ण।